Annual Subscription Fee Rs. 100/-
18th November 2015
ओ३म्
आर्य जीवन
ఆర్య జీవన్
संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर राजस्थान द्वारा

सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव सम्पन्न

महाराणा सज्जनसिंह के वंशज़ राजकुमार लक्ष्यसिंहजी सभा को सम्बोधित करते हुए

महाराणा सज्जन सिंह के संकल्प को पूरा करने के लिए हम वचन बद्ध-लक्ष्यसिंह

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश न्यास के कार्यवाहक अध्यक्ष

डॉ. अशोक आर्यजी अध्यक्षता करते हुए

डॉ. अशोक आर्यजी कार्यवाहक अध्यक्ष की अध्यक्षता में ३१ अक्तूबर, १ और २ नवम्बर २०१६ के दिनों में मेवाड़ की धरती महाराणा जी का उदयपूर जहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लगभग ६-७ मास रहकर अमरग्रन्थ, कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना की थी उस धरती के उसी महल अर्थात नवलखा महल गुलाब बाग उदयपूर में सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव सम्पन्न हुआ। ऐतिहासिक नगरी के इस महोत्सव में अनेक प्रान्तों से, दूर-सुदूर से आर्य बन्धु व प्रमुख

एक और चित्र में राजकुमार श्री लक्ष्यसिंहजी महाराणा, डॉ. सूर्यादेवीजी व न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंहजी कोठारी बोलते हुए और बैठे हुए देखे जा सकते है

लोगों ने भाग लिया। विशेषकर सांसद स्वामी सुमेधानन्द जी सरस्वती, स्वामी शारदानन्द जी सरस्वती दयानंद पीठ आबू रोड, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष स्वामी आर्यवेशजी, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के महामंत्री व आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के प्रधान श्री विट्ठलरावजी आर्य, आचार्य श्री सोमदेव शास्त्रीजी मुम्बई, आचार्या सूर्यादेवीजी शिवगंज सिरोही राजस्थान, पूर्व सांसद राशासिंहजी रावत, वैदिक विद्वान आचार्य श्री वेदप्रकाशजी श्रोत्रिय दिल्ली, गुजरात आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुरेशचन्द्रजी अग्रवाल, स्वामी ऋतस्पतिजी होशंगाबाद, प्रसिद्ध भजनोपदेशक पंडित सत्यपालजी सरल, पंडित

कैलाशजी कर्मठ, पंडित अमरसिंहजी, पंडिता पुष्पाशास्त्रीजी रेवाडी, पंडित जीववर्धनजी शास्त्री बांसवाड़ा, पंडित

हरिप्रसादजी शास्त्री नोएडा, साध्वी उत्तमा यतिजी, राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान नेता आचार्य श्री सत्यव्रतजी सामवेदी इत्यादि अनेक विद्वानों ने और प्रमुखों ने भाग लिया। समारोहमें मुख्य अतिथि के रूप में तीन महानुभावों के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखित किए जा सकते हैं। महाराणा सज्जन सिंह के वंशज राजकुमार लक्ष्य सिंहजी, राजस्थान सरकार के मंत्री श्री नन्दलालजी मीना तथा राजस्थान सरकार के लोकायुक्त न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंहजी कोठारी आदी हैं।

सत्यार्थ प्रकाश की धरती पर भाव विभोर जनता के मध्य नेताओं ने, विद्वानों ने व भजनोपदेशकों ने बड़ी मार्मिकता से अनेकों समस्यों पर अपने-अपने विचार रखे और सभी ने मिलकर यह संकल्प लिया कि किसी भी हालत में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखित मूल सत्यार्थ प्रकाश (द्वितीय संस्करण) में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होने दिया जाएगा। ऐसे करने वालों के किलाफ जमकर संघर्ष किया जाएगा तथा उन्हें दयानंद द्रोही घोषित करवाने का आँदोलन चलाया जाएगा। इस सम्मेलन से आर्य समाज में एक नई चेतना जगी है जिसे आगे-आगे नई शक्ति का स्वरूप दिया जाएगा और देश के पहरेदारी में अपनी प्रमुख भूमिका निभाएगा। आ.प्र.-तेलंगाना से भी प्रधानजी के साथ-साथ डॉ. वसुधा अरविन्द शास्त्री, श्री सत्यनारायणजी अड्वोकेट, श्री रामचन्द्रजी लालागुड़ा व अन्य साथियों ने सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव में भाग लिया। **चित्र में स्वामी सुमेधानन्दजी, स्वामी आर्यवेशजी, पंडित श्रोत्रीयजी, पंडित सोमदेवजी, श्री राषासिंहजी रावत, डॉ. अशोकजी आर्य आदि देखें जा सकते हैं।**

संक्षिप्त-जीवनी---

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

(श्री मोहनलाल)

कुछ प्रेरणाएँ - लाजपतराय ने अपने पिता के चरणों में बैठकर फारसी के काव्य-साहित्य का अध्ययन किया । फारसी में वह फिरदोसी के काव्य 'शाहनामा' और 'सिकन्दरनामा' से बहुत प्रभावित हुए ।

शेख सादी की गुलिस्तां का यह शेर लाजपतराय को बहुत प्रिय था-

आं न मन बाशम् कि रोजे जंग बीनी पुश्तेमन ।
ई मन करं दरमियाने खाके खूँ बीनी सरे ।।

अर्थ-मैं वह नहीं कि लड़ाई के दिन तू मेरी पीठ देखे । मैं वह हूं कि मिट्टी और खून के बीच तू मेरा सर देखे ।

उर्दू में जिन पुस्तकों को लाजपतराय रुचिपूर्वक पढ़ा करते थे वह 'रसूमे हिन्द' और 'कसस हिन्द' थी । 'कसस हिन्द' के लेखक लाजपतराय के लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज में उर्दू के प्राध्यापक उस्ताद मुहम्मद हुसैन आजाद थे ।

'कसस हिन्द' के दूसरे भाग के उन अंशों को लाजपतराय ने बार-बार पढ़ा होगा जिनमें राजपूतों की वीरता की प्रशंसा की गई है । चितौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण की कहानी, हुमायूं और अकबर के कष्टों का वर्णान, यह सब उनके कोमल हृदय पर अंकित हो गया ।

'कसस हिन्द' ने लाजपतराय को हिन्दुओं की वीरता का आदर करना सिखाया और उनके हृदय में हिन्दुओं के लिए अभिमान क भाव पैदा किया । लाला मुल्कराज भल्ला की 'वीर गंज' और 'शहीद गंज' पुस्तकों से भी वह प्रभावित हुए।

लाजपतराय अभी गवर्नमेंट कॉलेज के विद्यार्थी थे कि उनके हाथ बंगाल के प्रसिद्ध नेता और वक्ता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के व्याख्यानों की पुस्तक पड़ी । उस में एक व्याख्यान नवीन इटली के जन्मदाता और देशभक्त मेजिनी पर था । मेज़िनी को उन्होंने गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया और संकल्प किया कि वह उनके चरण-चिह्नों पर चलेंगे और राष्ट्र के निर्माण को अपने जीवन का लक्ष्य बना देंगे ।

एक और प्रेरणा लाजपतराय को राय बहादुर मूलराज से आई । मूलराज बहुत प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे । पंजाब में १९वीं सदी में जितने राष्ट्र के उत्थान के काम हुए हैं उनमें मूलराज की प्रेरणा थी । मूलराज पंजाब के पहले युवक थे जो कलकत्ता युनीवर्सिटी के एम.ए. हुए और वहां से रायचन्द प्रेमचन्द का स्वर्णापदक प्राप्त किया ।

मूलराज की राजनीतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी थी । वह पंजाब में डिस्ट्रिकट जज के पद पर नियुक्त थे । कांग्रेस के आरम्भ में सरकारी अफसर भी उसमें खुले भाग लेते थे । जब वह १८९३ की लाहौर की कांग्रेस में सम्मिलित हुए तब तक उसका कोई विधान न था । मूलराज शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कांग्रेस का अपना विधान बनाने के लिए सुझाव रखा हो ।

ऐसे दूरदर्शी के साथ रहने का अवसर लाजपतराय को हिसार में हुआ । इस अवसर पर मूलराज यूरोप की गुप्त मंडलियों का इतिहास जानने के लिए पुस्तकें पढ़ रहे थे । इसके कुछ पन्ने उन्होंने लाजपतराय को पढ़ कर सुनाए । राजद्रोही साहित्य की पहली पुस्तक लाजपतराय के हाथ पड़ी, पढ़ने के लिए मांगी तो मूलराज ने देने में कुछ संकोच किया ।

क्रान्तिकारी साहित्य का, खास तौर पर नवयुवकों के लिए, अपना आकर्षण होता है । विलायत में किसी मित्र द्वारा लाजपतराय ने 'यूरोप की गुप्त मंडलियों का इतिहास' और 'मेज़िनी की जीवनी' मंगाई । वह मेज़िनी की उच्च नैतिकता और मानवता पर इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने मेज़िनी की पुस्तक 'मानव के कर्त्तव्य' का उर्दू में अनुवाद कर डाला ।

हिसार के ज़माने में लाजपतराय का इण्डियन नैशनल कांग्रेस के साथ पहला सम्पर्क हुआ । इन्हीं दिनों में उन्होंने कांग्रेस के जन्मदाता ह्यम साहब की 'ऐन ओल्ड मैन्ज बर्डन' तथा 'स्टार आफ इण्डिया' नामक पुस्तकें पढ़ीं ।

लाजपतराय के लिए ये सब पुस्तकें जीवन साहित्य बन गई । इनको पढ़कर राष्ट्रीयता की जो मस्ती आई उससे वह आयुपर्यन्त भूमते रहे ।

आर्यसमाज के क्षेत्र में-

लाजपतराय की पहली कर्मभूमि आर्यसमाज थी । वह उसमें घुसे और अनन्य निष्ठा के साथ सम्मिलित हुए थे । आर्यसमाज में लाजपतराय का काम उनके सार्वजनिक जीवन का आधार बना ।

लाजपतराय का आर्यसमाज में पहले काम का सम्बन्ध उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द से है । स्वामी जी अजमेर में मृत्यु-शय्या पर पड़े थे । त्रिमूर्ति लाजपतराय, हंसराज और गुरुदत्त में विचार हुआ किसी-एक को स्वामीजी की सेवा के लिए अजमेर पहुंचना चाहिए । साथियों ने गुरुदत्त को भेजने का निश्चय किया ।

सन् १८८३ में दिवाली के दिन स्वामी जी का देहान्त हुआ । अगले दिन यह शोक-समाचार काली धारियों में अखबारों में निकला । आर्यसमाजियों में सन्नाटा छा गया । लाजपतराय वकालत की तय्यारी में व्यस्त थे । पुस्तक उनके हाथ से गिर पड़ी । आंखों में उनके आँसुओं की धारा बहने लगी, मानो कोई निकटस्थ चल बसा हो ।

आर्यसमाज के प्रधान लाला साईदास ने वच्छोवाली के समाज-मन्दिर में शोक-सभा आयोजित की और मुख्य वक्ता के कार्य के लिए लाजपतराय को चुना ।

सभा के समय पर आर्यसमाज में आदमी ही आदमी दिखाई देते थे । तिल रखने-भर को जगह न थी । सैकड़ों लौट गए। एक वक्ता के बाद दूसरा उठा, पर असफल रहा । लाजपतराय घंटा-भर बोले । इस भाषण ने लाजपतराय का सिक्का जमा दिया और उनकी गणना आर्यसमाज के प्रमुख वक्ताओं में होने लगी ।

अभी लाजपतराय को आर्यसमाज का सदस्य बने एक सप्ताह ही हुआ था कि उसके प्रधान साईदास ने एक जिम्मेदारी का काम उनको

सौंपा। स्वामी दयानन्द की यह कामना थी कि आर्यसमाज के प्रचारकार्य के लिए एक निधि बनाई जाए। लाजपतराय के नेतृत्व में धन-संग्रह करने के लिए एक डेपूटेशन निकला। सहारनपुर, मेरठ, फरुखाबाद आदि स्थानों में धन-संग्रह का काम हुआ।

लगभग इसी समय लाजपतराय ने पत्रकारिता के काम में प्रवेश किया। गुरुदत्त और हंसराज की सलाह से निश्चय किया कि अंग्रेजी और उर्दू में दो पत्र निकाले जाएं। अंग्रेजी के पत्र का नाम 'आर्यावर्त' रखा गया और उर्दू के पत्र का 'देशोपकारक'। 'आर्यावर्त' के संयुक्त सम्पादक हंसराज और गुरुदत्त बने और 'देशोपकारक' के लाजपतराय। अंग्रेजी का पत्र दो साल तक चला, परन्तु उर्दू के पत्र के लिए लाजपतराय कुछ न कर सके। निर्वाह की समस्या उनके लिए इतनी जटिल बन गई थी कि उनको जल्दी ही जगरांव में मुख्तारी का काम शुरु करना पड़ा।

इन्हीं दिनों में पंजाब में हिन्दी बनाम उर्दू का प्रश्न चला कि कौन-सी भाषा अंग्रेजी शासकों की भाषा होने के कारण सबको माननीय थी। लाजपतराय को हिन्दी से प्रेम करना आर्यसमाज ने सिखाया था। उन्होंने हिन्दी का पक्ष लिया। वह हंसराज और गुरुदत्त के साथ हिन्दी के कट्टर समर्थक के रूप में अन्दोलन में कूद पड़े। हिन्दी के पक्ष में हजारों के हस्ताक्षर कराकर उन्होंने गवर्नमेंट के पास भेजे। कॉलेज के प्रिंसिपल तक शिकायत पहुंची। प्रिंसिपल ने लाजपतराय को झाड़-फटकार दी और कहा कि विद्यार्थियों को इस प्रकार के आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहिए।

जगरांव में मुख्तारी के जमाने में लाजपतराय ने वकालत की परीक्षा पास की। संयोग ऐसे बने कि उनको वकालत का काम हिसार में शुरु करना पड़ा जहां वह १८८६-१८९१ तक रहे। वह बहुत परिश्रमी और ईमानदार वकील थे। उनका काम खूब चमका और उनकी गणना शीघ्र ही चोटी के वकीलों में होनी लगी।

इधर आर्यसमाज के काम को भी लाजपतराय ने चालू रखा। जब तक समाज का अपना मन्दिर नहीं बना उसके साप्ताहिक सत्संग लाजपतराय के घर लगा करते थे। मन्दिर की कमी को अनुभव करके उसके निर्माण का संकल्प लाजपतराय ने किया और १५०० का दान निज से देकर निर्माण का काम आरम्भ करवाया और जल्दी ही एक सुन्दर भवन बन गया। लाहौर छोड़ने के बाद हिसार में केन्द्रीय आर्यसमाज के नेताओं के साथ उनके सम्पर्क बने रहे और समाज के कार्य की गति-विधि के साथ वह बराबर परिचित रहे।

लाजपतराय के हिसार आने से पहले समाज का काम केवल शहरों तक सीमित था। लाजपतराय समाज को देहातों में ले गये और हजारों जाट आर्य समाजी बन गये। बाद में जाटों में समाज के आन्दोलन को अग्रसर करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द थे।

चन्दुलाल खजानची उन इने-गिने मित्रों में थे, जिन्होंने सन् १९०७ के निर्वासन-काल में भी लाजपतराय का साथ नहीं छोड़ा। हिसार में आर्यसमाज के काम को सर्वप्रिय बनाने में चन्दुलाल का बड़ा भारी हाथ रहा। जब उनकी मृत्यु हुई बीसियों की जबान पर था कि हरियाने का सरदार चल बसा है।

लाजपतराय का दूसरा मैत्री का सम्पर्क पं० लखपतराय के साथ हुआ। उन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों मित्र बनाये होंगे, परन्तु निःस्वार्थता, निःस्पृहता और सयम में लखपतराय अनुपम थे। वह कभी भी लाजपतराय के राजनीतिक विचारों से सहमत नहीं हुए। इसका कारण यह न था कि वह भीरु या कायर स्वभाव के थे, बल्कि यह कि उनकी धारणा बन चुकी थी कि आर्यसमाज को राजनीतिक मामलों में दखल देने से हानि पहुंचेगी।

तीसरे मित्र ला० चूड़ामणि वकील थे, जिनके सुपुत्र ला० जसवन्तराय चूड़ामणि बाद में लाजपतराय द्वारा संस्थापित 'पंजाबी' के संचालक बने और उनका सुख-दुःख में साथ दिया। जब लाजपतराय १८९१२ में लाहौर की चीफकोर्ट में बकालत करने के लिए आए उस समय आर्यसमाज में आमिष और निरामिष या घास अथवा मांस पार्टियों का झगड़ा जोरों पर था। वस्तुतः झगड़ा सिद्धान्तों का न था, बल्कि यह था कि आर्यसमाज बच्छोवाली के सन्दिर और डी.ए.वी. कॉलेज का स्वामित्व किसके पास रहे। दुःख की बात तो यह है कि व्यक्तिगत झगड़ो को सिद्धान्तों का रूप दिए बिना दल-बन्दी पनप नहीं सकती।

दल-बन्दी का अन्त करने के लिए लाजपतराय ने सुझाव दिया कि ईंट-गारे की इमारतों के लिए भगड़ा करना आर्यों को शोभा नहीं देता। धर्म-प्रचार की दृष्टि से उचित यह होगा कि एक दल के लोग अपना मन्दिर अलग बना लें। दोनों दलों को यह बात पसन्द आई। मांस-पार्टी के लोगों ने अनारकली में अलग मन्दिर की स्थापना की

लाजपतराय का कार्यक्षेत्र शीघ्र विस्तृत हुआ। वह आर्य समाज के सीमित दायरे से बाहर चले गये। सदस्य न रहते हुए भी उसके प्रति लाजपतराय का स्नेह-भाव सदा बना रहा। आर्यसमाज की दल-बन्दी में वह कभी नहीं पड़े।

शिक्षा-क्षेत्र में अग्रणी :

पश्चिमी और पूर्वीय संस्कृति के सम्पर्क के कारण भारत में एक नई शिक्षा-पद्धति का जन्म हुआ। निज देश की शिक्षा के ढांचे का अन्त हुआ जो गुरुकुलों, टोलों और मकतबों में चलती थी और जिसमें मुख्यतः संस्कृत, फारसी, अरबी भाषा आदि और महाजनी ढंग का गणित सिखाया जाता था। अंग्रेजी स्कूल खुलने लगे जिनका संचालन अंग्रेज सरकार करती थी।

कुछ अंग्रेजी स्कूलों में पठित युवकों में लोक-सेवा की भावना जागी। उन्होंने अंग्रेजी ढंग के स्कूल खोल कर शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्र प्रयोग आरम्भ किए। पूना में तिलक ने अपने सहयोगियों के साथ न्यु गिलिश स्कूल की स्थापना की, अलीगढ़ में ऐंग्लो-मुहम्मदन कॉलेज खुला और भारत के अन्य भागों में लोगों द्वारा संचालित अंग्रेजी ढंग के स्कूल खुले। पंजाब में गैर सरकारी, स्वतन्त्र शिक्षा का आरम्भ आर्यसमाज ने किया। इस कार्य के अग्रणी समाज में नवदीक्षित युवक लाजपतराय, हंसराज और गुरुदत्त थे।

१८८३ में दिवाली के मंगल दिवस पर आर्यसमाज के संस्थापक और महान समाज-सुधारक स्वामी दयानन्द का देहान्त हुआ। तीनों युवकों में, जो कॉलेज के जमाने के सहपाठी और मित्र थे, अपने प्रेरक दयानन्द का स्मारक बनाने की चर्चा चली। तीनों ने संकल्प किया कि आर्यसमाजी स्वामी जी का एक सुन्दर स्मारक शीघ्र खड़ा करें।

स्मारक के रूप पर स्वामी जी के अनुयायियों में गम्भीर विमर्श हुआ जिसमें प्रमुख भाग लेने वाले लाजपतराय, हंसराज और गुरुदत्त थे। एक और महान् व्यक्ति इनके साथ थे। वह लाला लालचन्द एम.ए. थे, जो २५ साल तक दयानन्द कॉलेज प्रबन्धकर्तृसभा के अध्यक्ष रहे। बहुमत से यह निश्चय हुआ कि स्वामी

जी की यादगार का उत्तम रूप एक कॉलेज होगा। स्वामी जी के सन्देश को उत्साहपूर्वक ग्रहण करने वाले पंजाब के लोग थे । इसलिए यह भी निश्चय हुआ कि कॉलेज की स्थापना लाहौर में की जाए ।

सन् १८८४ के आरम्भ में कॉलेज की योजना का जो मसौदा सहायकों के पास भेजा गया उसका निम्न अंश संस्थापकों की भावना को प्रदर्शित करता है ।

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से विदेशी विचारों की बाढ़ आ गई है । उसने हजारों को जागृत किया है और उनके मनों में गहरी उथल-पुथल पैदा हुई है । परन्तु विदेशी शिक्षा का यह भी परिणाम निकला है कि समाज में एक ऐसा शिक्षित-वर्ग पैदा हो गया है जो जन-साधारण से अपने को अलग समझता है और अपने ही संकुचित दायरे में घूमता है । इस पठित श्रेणी का जन-साधारण के साथ सम्पर्क टूटता जाता है और वह जन-साधारण के जीवन का किसी रूप में प्रतिनिधित्व नहीं करती ।"

"इस शोचनीय अवस्था का कारण यह है कि हमारी शिक्षा की बागडोर विदेशियों के हाथ में चली गई है जो हमारी कठिनाइयों और आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझ कर उनका उचित प्रतिकार नहीं कर सकते

यह उनका विश्वास बन गया था कि इस भेद-भाव को मिटाने का एक मात्र उपाय यह है कि देश की शिक्षा की बागडोर विदेशी सरकार के हाथ न जाने पाए । कॉलेज की योजना बनाने वाले निपट रूढिवादी न थे । उनमें समय की परख करने की सामर्थ्य थी । उनकी धारणा बन चुकी थी कि पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय किए बिना राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकेगा । वह राष्ट्रीयता और धर्म या मज़हब में कोई अन्तर नहीं देखते थे । आर्यसमाज के काम और जाति की सेवा में उनकी दृष्टि में कोई विरोध-भाव प्रतीत नहीं होता था । इसलिए दयानन्द की स्मृति में स्थापित कॉलेज के साथ सोच-समझ कर उन्होंने ऐंग्लो वैदिक शब्द जोड़े थे । इनमें ऐंग्लो और वैदिक शब्द पश्चिमी और पूर्व की संस्कृति के प्रतीक थे

अब लाजपतराय, हंसराज और गुरुदत्त के सम्मुख यह जटिल प्रश्न उपस्थित हुआ कि स्मारक के लिए धन कैसे इकट्ठा किया जाय । भिक्षा के लिए टोलियां निकलीं । पंजाब आर्यसमाज को स्थापित हुए केवल ११ साल हुए थे । उस के सदस्यों की संख्या समस्त देश में बहुत सीमित थी । उन में भी अधिकांश मध्यम श्रेणी के लोग थे जिन से मोटे चन्दे की रकमें मिलने की आशा न थी । मांगने वालों में उच्चकोटि की वक्तृत्व शक्ति लाजपतराय में थी । परन्तु व्याख्यानों से रुपया नहीं आया करता । संस्थापकों के सामूहिक प्रयत्न से केवल २५ रु० हज़ार इक्ट्ठे हो सके ।

कॉलेज के संस्थापक इस परिणाम पर पहुंचे कि त्याग की भावना के बिना वह स्वावलम्बी नहीं हो सकेगा । इस के लिए हंसराज आगे बढ़े और और उन्होंने कॉलेज की आजीवन अवैतनिक सेवा का व्रत लिया । हंसराज विवाहित थे । समस्या थी कि अवैतिनक होने की अवस्था में वह परिवार का भरणपोषण कैसे करेंगे । ऐसे धर्मसंकट के समय हंसराज के बड़े भाई मुल्कराज ने अनुपम उदारता का परिचय दिया । वह एक डाकघर में ८०) मासिक लिया करते थे । इस का आधा उन्होंने भाई को देने का संकल्प किया, शेष निजी निर्वाह के लिए रखा । इस प्रकार हंसराज का धर्मसंकट से बचाव हुआ।

ऐसा ही धर्मसंक्ट लाजपतराय के लिये आया । वह भी हंसराज का अनुसरण करके कॉलेज को अपना जीवन-दान करना चाहते थे । परन्तु लाजपतराय को मुल्कराज जैसा भाई नहीं मिल सका जो उन के परिवार का बोझ ले सके ।

एक और अड़चन लाजपतराय को कॉलेज को जीवन देने में आई कि वह ग्रेजुएट न थे । डिग्री लिए बिना कॉलेज का प्राध्यापक बनता संभव न था । लाजपतराय दयानन्द स्कूल के अध्यापक पद पर कार्य करने के लिए तय्यार हो गए । हंसराज इस पग के पक्ष में न थे, क्योंकि स्कूल की सेवा में लाजपतराय का भविष्य न बन सकेगा । बहुत हाथ-पैर मार कर वह सैकण्ड मास्टरी के पद पर पहुंच सकेंगे ।

लाजपतराय बक्ता के तौर पर बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे । हंसराज ने सलाह दी कि वकालत का धन्धा लेने से उनको आर्थिक उन्नति के अवसर मिलेंगे और धन और समय दोनों दे कर वह कॉलेज और देश की अधिक सेवा कर सकेंगे । मित्र की समय पर दी गई सलाह काम आई । लाजपतराय का धर्म-संकट दूर हुआ । वह एक गलत कदम उठाने से रुक गए । उन को देश के विशाल क्षेत्र में कार्य करने का अवसर मिला ।

डी.ए.वी. कॉलेज के निर्माताओं में एक और भावना ने काम किया । वह भावना स्वावलम्बन की थी कि कॉलेज के संचालन में दमड़ी-भर भी सरकार से सहायता नहीं लेनी । स्वराज्य के ज़माने की पीढ़ी को यह भावना शायद पागलपन लगे । परन्तु आज से ७०, ८० साल पहले जब अंग्रेजों की सता आकाश-बेल की तरह देश पर व्यापक हो रही थी, यह भावना कॉलेज के कार्यकत्ताओं के लिये गम्भीर आत्म-विश्वास की द्योतक थी ।

समय के बीतने के साथ दयानन्द ऐंगलो वैदिक कॉलेज संस्था ही नहीं रहा, वह आन्दोलन बन गया । एक नन्हे पौधे से वह शुरू हुआ था, आज वह महान् विटप बरगद बन गया है । दयानन्द की स्मृति में बीसियों कॉलेज और सैकड़ों स्कूल देश में स्थापित हो गए हैं ।

कुछ समय तक डी.ए.वी. कॉलेज एक ही विचाराधारा में चला कि शिक्षा के क्षेत्र से पाश्चात्य और पूर्वीय संस्कृति के समय मुंशीराम, बाद में स्वामी श्रद्धानन्द, जालन्धर में वकालत करते थे । मुंशीराम में आर्यसमाज की सेवा करने का बीज अंकुरित हुआ । उन्होंने दयानन्द की पुस्तकों के पन्ने उलटे । वह इस परिणाम पर पहुंचे कि लाजपतराय हंसराज आदि का काम दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों के विरोध में चल रहा है । दयानन्द तो प्राचीन गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति का पुनरुद्धार करना चाहते थे ।

मुंशीराम ने वकालत को लात मार दी । सब-कुछ छोड़ कर हरिद्वार जा बैठे । वहां गंगा की कई धाराओं को पार कर जंगलों से घिरे हुए कांगड़ी ग्राम में उन्होंने गुरुकुल की स्थापना की । शिक्षा के क्षेत्र में यह एक दम नया प्रयोग था । गुरुकुल कांगड़ी एक नई विचाराधारा का चिह्न बन गया । हमारी शिक्षा-प्रणाली में जो अंग्रेजियत की बाढ़ आ गई थी उस की रोक-थाम करने में गुरुकुल ने ज्योतिस्तम्भ का काम किया ।

आर्यसमाज के इन शिक्षा-सम्बन्धी उद्योगों में शुद्ध राष्ट्रीयता की भावना काम कर रही थी । उस समय अर्थात् सन् १८८९ में जब दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज स्थापित हुआ, लाजपतराय, हंसराज, मुंशीराम स्वप्न में भी यह कल्पना न कर सकते थे कि उन के

पुरुषार्थ को सन्देह की दृष्टि से देखा जायगा । आर्यसमाज के विरोधियों को उस में साम्प्रदायिकता की गन्ध आने लगी ! आर्यसमाज के देखादेखी सिक्खों ने सिंह-सभा, सनातनियों ने सनातनधम४-सभा और मुसलमानों ने अंजमन-हिमायत-इस्लाम के आन्दोलन शुरु किए । इन प्रतिपक्षियों ने आर्यसमाज के मुकाबले में खालसा, सनातनधर्म और इस्लाम के नाम पर अलग-अलग संस्थाएं खोलने का प्रयत्न किया ।

इस प्रकार का अच्छा या बुरा परिणाम क्यों निकला ? कैसे साम्प्रपायिकता के विष ने एक भले काम में प्रवेश किया? इन बातों पर विचार विषयान्तर हो जायगा । इस में सन्देह नहीं कि लाजपतराय, हंसराज, मुंशीराम जैसे मार्गदर्शकों के इरादे नेक थे । उन्होंने शुद्ध राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर शिक्षा के क्षेत्र में अपने प्रयोग किये थे ।

राजनीति में प्रवेश-

हिसार के आवास के जमाने में लाजपतराय ने अपने राजनीतिक जीवन के लिए खूब तैयारी की । उनका विद्यार्थि-जीवन अधूरा रहा था, विधिवत् शिक्षा उन्हें नहीं मिली थी । निर्वाह की चिन्ताओं के कारण अपने बौद्धिक विकास के लिए वह पर्याप्त समय नहीं निकाल सके थे । इस त्रुटि को उन्होंने हिसार में पूरा किया और सोई हुई स्वाध्याय की वृत्ति को फिर से जागरित किया । राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ीं ।

धन ही सब-कुछ है, ऐसी मनोवृत्ति आर्यसमाज की कृपा से लाजपतराय की कभी नहीं बनी । धन कमाने का पागलपन उन पर कभी सवार नहीं हुआ । इसलिए लिखने-पढ़ने के काम के लिए समय निकालने में उन्हें कभी कठिनाई नहीं हुई ।

उस रोचक कार्य में लाजपतराय के साथी जिले के अंग्रेज़ी क्लर्क एक मुसलमान भाई थे जिनका नाम मीर मुहम्मद हुसैन था । उनकी मित्रता को वह प्यार के साथ याद किया करते थे । जब तक वह हिसार में रहे मीर साहब के साथ उनका गहरा सम्बन्ध रहा । कई बार उनका खाना मीर साहब के यहां होता था और मीर साहब उनके घर खाने के लिए आते थे और उनकी पुस्तकें पढ़ते थे ।

अन्तिम तीन वर्षों में लाजपतराय हिसार म्यूनिसिपल कमेटी के निर्वाचित सदस्य और अवैतनिक मन्त्री रहे । जिस वार्ड से वह सदस्य चुने गए, उसमें मुसलमानों की आबादी अधिक थी । जब वे उनका प्रस्ताव लेकर डिप्टी कमिश्नर के दफतर में गए, उक्त अधिकारी ने मुसलमानों का इरादा बदलने की बहुत कोशिश की, पर वह डटे रहे । लाजपतराय बिना विरोध कमेटी के मैम्बर चुने गए ।

म्यूनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष डाकघर के अंग्रेज अफसर थे जो फौजी कमसेरियत में काम करते थे । डाक्टर साहब कुटिल और अत्याचारी स्वभाव के थे । शहर के लोग उनसे बहुत तंग थे । इसलिए डिप्टी कमिश्नर साहब और अध्यक्ष लाजपतराय पर कड़ी दृष्टि रखते थे ।

कमेटी के कुल पन्द्रह मैम्बर थे, जिनमें तीन अंग्रेज थे । कई बार ऐसे अवसर आए कि पन्द्रह भारतीय मैम्बर एक ओर होते थे और अंग्रेज़ मैम्बर दूसरी तरफ ।

लाजपतराय ने तीन बर्षों में कमेटी के शिक्षा और स्वास्थ्य के कामों में अच्छी सफलताएँ प्राप्त की । उसके अध्यक्ष के उकसाने पर एक हैडमास्टर के साथ उनका तकरार हो गया, जिसमें हैडमास्टर को नीचा देखना पड़ा । एक और झगड़ा उनका अध्यक्ष के साथ इस बात पर हुआ कि छोटेलाल को मानपत्र देना था । अध्यक्ष का आग्रह था कि मानत्र में जनता के कष्टों और कामों की चर्चा न की जाए । परन्तु लाजपतराय जैसा मानष्त्र चाहते थे वैसा ही पेश हुआ ।

लाजपतराय की तीन साल की मैम्बरी में हिसार वालों ने कमेटी के कामों में खासी दिलचस्पी लगी । उसके प्रबन्धकों में ईमानदारी, काम की समझ और लोकहित की भावनाएं आ गई थीं । लाजपतराय कमेटी के कामों के पथ-प्रदर्शक बने।

इस समय लाजपतराय की आयु २५ साल की थी । उनमें देश-प्रेम का तूफान उठ रहा था । इस प्रकार के तूफान से वह पहले भी विचलित हुए थे । जब उन्होंने अपने साथियों के साथ दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कॉलेज की स्थापना की थी और वह जीवन की आहुति कॉलेज के काम में डालना चाहते थे । वह उतावले थे कि इस नए आवेश को कैसे शान्त किया जाए। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हो चुकी थी । उसकी प्रवृत्तियों से वह कुछ परिचित हो चुके थे । कांग्रेस के काम की तरफ उनका झुकाव हुआ ।

कांग्रेस के मुख्य विरोधी प्रसिद्ध सर सैयद अहमद खां थे, जो अलीगढ़ ऐंग्लो-मोहम्मदन कॉलेज के जन्मदाता थे ।

सर सैयद अहमद साहब ने कुछ समय पहले भारतीय राष्ट्रीयता का नारा लगाया था और इसके पक्ष में लेख लिखे और भाषण दिए थे । कांग्रेस की स्थापना के साथ उन्होंने एकदम कांटा बदला और मुसलमानों को कांग्रेस के आन्दोलन से अलग रहने का परामर्श दिया ।

लाजपतराय को सर सैयद को राष्ट्र-विरोधी नीति में द्रोह की झलक आई । वह एक राजनीतिक विद्यार्थी के रूप में उनके लेख और भाषणों का अनुशीलन कर रहे थे । वह अपने को सम्भाल न सके । उन्होंने उर्दू के पत्रों में सर सैयद के नाम खुली चिट्ठियां लिखीं जिनमें उनकी पेन्तराबाज़ी की कड़ी आलोचना की । खुली चिट्ठियों के लेखक ने अपना नाम गुप्त रखा। पर नीचे दिए गए स्थान से स्पष्ट हो गया कि वह लाजपतराय ने लिखी हैं ।

खुली चिट्ठियों की खूब चर्चा चली । कांग्रेस के जन्मदाता ह्यम साहब को जब उनका पता चला, तो उनको अंग्रेजी में अनुवाद करके प्रकाशित किया गया ।

यह सब-कुछ सन् १८८८ की कांग्रेस के पहले ही हो चुका था, जिसमें लाजपतराय पहली बार सम्मिलित हुए । सर सैयद अहमद खां के साथ यह उनका पहला राजनीतिक विवाद था, जिसने उनको विख्यात किया । इलाहाबाद जब वह पहुंचे, स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए ह्यूम साहब, पण्डित अयोध्यानाथ और पण्डित मदनमोहन मालवीय आए हुए थे । तरुण मालवीय ने स्वयंसेवकों के साथ लाजपतराय के नाम पर तालियां बजाई ।

कांग्रेस के अदिवेशन में लाजपतराय का बहुत सत्कार हुआ । व्याख्यान देने के लिए वह कई बार मंच पर आए । राय मुरलीधर, हंसराज साहनी प्रभृति पंजाब के प्रतिनिधियों की सम्मति से अगले वर्ष पंजाब में कांग्रेस को निमन्त्रण दिया । परन्तु कांग्रेस के नेता उसे बम्बई ले गए । इलाहाबाद की कांग्रेस में सम्मिलित होना राजनीतिक जीवन में लाजपतराय का पहला कदम था । कांग्रेस के अधिवेशन के बाद खुली चिट्ठियों की अंग्रेजी

...शेष पृ. १० पर

दयानन्द भक्त और क्रान्तिकारियों के प्रथम गुरू पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

गुजरात की भूमि में महर्षि दयानन्द के बाद जो दूसरे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी देशभक्त महापुरुष उत्पन्न हुए, वह 'पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा' के नाम से विख्यात है। पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने देश से बाहर इंग्लैण्ड, पेरिस और जेनेवा में रहकर देश को अंग्रेजों की दासता से पूर्ण स्वतन्त्र कराने के लिए अनेक विध प्रशंसनीय कार्य किये। उनका जन्म ४ अक्तूबर, सन् १८५७ को गुजरात के कच्छ भूभाग के माण्डवी नामक कस्वे में श्री कृष्णजी भणसाली के यहां एक निर्धन वैश्य परिवार में हुआ था। आप आयु में महर्षि दयानन्द जी से लगभग साढ़े बत्तीस वर्ष छोटे थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा माण्डवी की ही एक प्राइमरी पाठशाला में हुई। जब आप १० वर्ष के हुए तो आपकी माताजी का देहान्त हो गया। इसके बाद आपका पालन-पोषण ननिहाल में हुआ। आपने ननिहाल मुजनगर में रहकर वहां के हाईस्कूल में अपनी शिक्षा को जारी रखा। आप १२ वर्ष की आयु में एक 'विदुषी संन्यासिनी माता हरिकुंवर बा' के सम्पर्क में आये। उनकी प्रेरणा से आपने संस्कृत भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लिया। कच्छ निवासी सेठ मथुरादास भाटिया आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको अध्ययनार्थ मुम्बई ले गये और वहां विलसन हाईस्कूल में प्रविष्ट कराया। यहां सर्वोच्च अंक प्राप्त कर आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और आपको 'सेठ गोकुलदास काहनदास छात्रवृत्ति' प्राप्त हुई। इस छात्रवृत्ति के आधार पर आपने मुम्बई के प्रसिद्ध 'एलिफंस्टन हाईस्कूल' में अध्ययनार्थ प्रवेश ले लिया। बम्बई के एक धनी सेठ श्री छबीलदास लल्लू भाई का पुत्र रामदास श्यामजी का सहपाठी था। दोनों में मित्रता हो गई। सेठ छबीलदास जी को इसका पता चला तो पुत्र को कहकर श्यामजी को अपने घर पर बुलाया। आप श्यामजी के व्यक्तित्व, सौम्य व गम्भीर प्रकृति तथा आदर भाव आदि गुणों से प्रभावित हुए और आपने उन्हें अपना जामाता-दामाद बनाने का निर्णय ले लिया। इसके कुछ दिनों बाद उनकी १३ वर्षीय पुत्री भानुमति जी से १८ वर्षीय श्यामजी का सन् १८७५ में विवाह सम्पन्न हो गया।

मुम्बई आकर श्यामजी कृष्ण वर्मा प्रार्थना समाज के समाज सुधार आन्दोलन से जुड़ गये थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने २९ जनवरी से २० जून, १८७५ तक वेदों का प्रचार करते हुए मुम्बई में प्रवास किया था। मुम्बई में उन दिनों बुद्धिजीवी लोगों में उनके प्रवचनों की चर्चा होती थी। आप स्वामीजी के सम्पर्क में आयो और उनके न केवल व्यक्तित्व व वैदिक ज्ञान से ही परिचय प्राप्त किया अपितु उनकी सर्वांगीण विचारधारा व कार्यों को जान कर वह उनके अनुयायी बन गये। १० अप्रैल, सन् १८७५ को जब मुम्बई के गिरिगांव-काकड़वाड़ी मोहल्ले में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की गई तो वहां उपस्थित लगभग १०० से कुछ अधिक लोगों में पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा सहित उनके श्वसुर श्री छबीलदास जी व श्याला श्री रामदास बतौर संस्थापक सदस्य उपस्थित थे। १२ जून, सन् १८७५ को महर्षि दयानन्द जी का रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य पं. कमलनयन के साथ मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ होने के अवसर पर भी आप इस शास्त्रार्थ में श्रोता व दर्शक के रूप में उपस्थित थे। इस शास्त्रार्थ में दयानन्द जी की विद्वता का लोहा सभी ने स्वीकार किया था। इसके प्रभाव से आप महर्षि दयानन्द के और निकट आये और उनकी प्रेरणा व अपनी इच्छा से आपने वैदिक साहित्य का अध्ययन किया तथा उनके शिष्य बन गये। स्वामी दयानन्द जी के सान्निध्य से उनका संस्कृत का ज्ञान और अधिक परिष्कृत, परिपक्व व समृद्ध हुआ। स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने नासिक की यात्रा कर १ व २ अप्रैल, १८७७ को वहां संस्कृत में वेदों पर व्याख्यान दिये। लोग एक ब्राह्मणेतर व्यक्ति से संस्कृत में धारा प्रवाह व्याख्यान की अपेक्षा नहीं रखते थे। इन व्याख्यानों का वहां की जनता पर गहरा प्रभाव हुआ। इसके बाद आपने अहमदाबाद, बड़ौदा, भड़ौच, भुज और माण्डवी सहित लाहौर में जाकर वेदों पर व्याख्यान दिये। आपके संस्कृत व्याख्यानों से घूम मच गई और श्रोताओं ने आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की। पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्वामी दयानन्द जी के यजुर्वेद व ऋग्वेद भाष्य के प्रकाशन व उसके डाक से प्रेषण के प्रबन्धकर्त्ता का कार्य भी पर्याप्त अवधि तक किया। इंग्लैण्ड जाने तक आप यह कार्य करते रहे थे।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, लन्दन में संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष सर मोनियर विलियम सन् १८७८ में भारत आये थे। महर्षि के निकटवर्ती शिष्य श्री गोपाल हरि देशमुख की अध्यक्षता में पूना में उनका व्याख्यान आयोजित किया गया था। पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा व्याख्यान हुआ जिसका गहरा प्रभाव सर मोनियर विलियम और श्रोताओं पर भी हुआ। उन्होंने पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के सहायक प्रोफेसर के पद का प्रस्ताव दिया। वह इस प्रस्ताव से सहमत हुए। स्वामी दयानन्द जी को भी पण्डित जी ने जानकारी दी। स्वामी दयानन्द जी ने न केवल अपनी सहमति व्यक्त की अपितु उन्हें इंग्लैण्ड जाकर करणीय कार्यों के बारे में मार्गदर्शन दिया। बाद में स्वामीजी ने उन्हें जो पत्र लिखे उससे भी स्वामीजी के श्यामजी के मध्य गहरे गुरु शिष्य संबंध का अनुमान होता है। श्यामजी ने लन्दन पहुंच कर २१ अप्रैल, सन् १८७९ को पदभार सम्भाला था। लन्दन में आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा पास करने हेतु भी 'इनर टैम्पल' में प्रवेश लिया। आपने सन् १८८१ के आरम्भ में 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के निमन्त्रण पर 'भारत में लेखन कला का आरम्भ'

विषय पर अपना शोध प्रबन्ध पढ़ा । इस प्रस्तुति से प्रभावित होकर आपको रायल एशियाटिक सोसायटी का सदस्य बना लिया गया । 'इंग्लैण्ड एम्पायर क्लब' एक ऐसा क्लब था जिसमें राज परिवार के लोग ही सदस्य बन सकते थे । श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ऐसे पहले भारतीय थे जिन्हें क्लब की सदस्यता दी गई थी । सन् १८८१ में ही इंग्लैण्ड में भारत मंत्री ने आपको प्राच्य विद्या विशारदों के वर्लिन सम्मेलन में भाग लेने के लिए अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा था । सन् १८८३ में आपने लन्दन में बी.ए. की परीक्षा पास की और भारत आ गये । स्वामी दयानन्द जी ने अपने इच्छा पत्र में श्यामजी कृष्ण वर्मा को अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया था । २८-२९ दिसम्बर, १८८३ को हुए सभा की अजमेर के मेवाड़-दरबार की कोठी में आयोजित प्रथम बैठक में आप सम्मिलित हुए । मार्च, १८८४ में आप सपत्नीक लन्दन लौट गये थे और नवम्बर, १८८४ में आपने बैरिस्ट्री की सम्मानजनक परीक्षा उत्तीर्ण की । आप पहले भारतीय थे जिन्होंने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लन्दन से बैरिस्ट्री पास की थी। आप जनवरी, १८८५ में पुनः स्वदेश लौट आये थे ।

भारत आकर श्यामजी कृष्ण वर्मा रतलाम राज्य के सन् १८८५ से सन् १८८८ तक दीवान रहे । इसके बाद उन्होंने अजमेर में वकालत की । उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह जी ने उन्हें दिसम्बर १८९२ में अपने राज्य की मंत्रि परिषद में सदस्य मनोनीत किया । उदयपुर में आप दो वर्षों तक 'राज्य कौंसिल' के सदस्य रहे । ६ फरवरी १८९४ को आप जूनागढ़ रियासत के दीवान बने परन्तु जूनागढ़ के कुछ कटु अनुभवों से अंग्रेज जाति के प्रति उनके विश्वास को गहरी चोट लगी । 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की दब्बू नीति उन्हें पसन्द नहीं थी । लोकमान्य वाल गंगाधर तिलक जी से उनकी मैत्री थी । चापेकर बन्धुओं द्वारा जब प्लेग कमिश्नर मिस्टर रैण्ड और लेफ्टिनेंट अर्येस्ट की हत्या की गई, तब अंग्रेज सरकार ने तिलक जी को अठरह मास का कारावास का दण्ड दिया । इससे श्यामजी का अंग्रेजों के प्रति विश्वास समाप्त हो गया । श्याम जी का महर्षि दयानन्द के वेद सम्मत राजनीतिक विचारों में पूर्ण विश्वास था। इसका क्रियान्वयन उन दिनों कांग्रेस द्वारा किंचित परिवर्तन के साथ किया जा रहा था जिससे पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा सहमत थे एवं इसके द्वारा शुभपरिणामों की आशा भी रखते थे ।

पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपने विवेक से विदेश में जाकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए कार्य करने का निर्णय किया । वह उदारवादी विचारों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रति पूरी तरह से आश्वस्त नहीं थे । अतः सन् १८९७ के अन्तिम दिनों में वह इंग्लैण्ड आ गये । यहां रहकर आपने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जिन्हें पूर्णरूपेण इस संक्षिप्त लेख में प्रस्तुत करना कठिन है । प्रमुख कार्यों में से एक कार्य आपके द्वारा लन्दन में एक मकान खरीदा जिसे इण्डिया हाउस का नाम दिया । यह मकान क्रामवेल एवेन्यू हाईगेट का मकान नं. ६५ था । यह इण्डिया हाउस ही हमारे क्रान्तिकारियों का इंग्लैण्ड में मुख्य निवास स्थान व क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र बना । पं. श्याम जी ने भारत से इंग्लैण्ड जाने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृतियां देना भी आरम्भ किया जिसमें एक शर्त यह होती थी कि छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति अंग्रेजों की नौकरी नहीं करेगा और न उनसे कोई लाभ प्राप्त करेगा । डा. सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार यह 'इण्डिया हाउस' इंग्लैण्ड में भारतीय क्रान्तिकारी गतिविधियों और क्रिया-कलापों का सबसे बड़ा केनद्र बना रहा। जिन लोगों ने छात्रवृत्ति प्राप्त कर इंग्लैण्ड में आकर इण्डिया हाउस में निवास किया । इन छात्रों में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वीर विनायक दामोदर सावरकर भी थे जो सन् १९०६ में वहां पहुंचे थे । इंग्लैण्ड में रहते हुए सन् १९०५ में पं. श्यामी जी कृष्ण वर्मा ने एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' का प्रकाशन आरम्भ किया जिसका उद्देश्य उन्होंने भारत में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधार घोषित किया । अपने आरम्भिक लेख में आपने लिखा कि यह पत्र बताएगा कि ब्रिटिश शासन के नियंत्रण में भारतीयों के साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जाता है और उस शासन के प्रति भारतीयों के मन में क्या भावनाएं हैं । पंडित जी ने यह पत्र इंगलैण्ड व विदेशों में लोकमत को जाग्रत करने की दृष्टि से आरम्भ किया था । पं. श्यामजी का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य इंग्लैण्ड में 'इंडियन होमरूल सोसायटी' की स्थापना करना था । यह सोसायटी १८ फरवरी, १९०५ को स्थापित की गई थी । इसका पहला उद्देश्य भारत में होमरूल अर्थात् स्वशासन स्थापित करना था । दूसरा उद्देश्य पहले लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इंग्लैण्ड में रहकर सभी आवश्यक कार्य करना था जिससे स्वशासन का अधिकार प्राप्त हो सके। संस्था का तीसरा उद्देश्य देशवासियों में स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय एकता से संबंधित बौद्धिक सामग्री व ज्ञान को उपलब्ध कराना था । श्यामजी कृष्ण वर्म्मा इस सोसायटी के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष सरदार सिंह राणा, जे. एम. पारीख, अब्दुल्ला सुहरावर्दी और गोडरेज तथा मन्त्री जे. सी. मुखर्जी बनाये गये थे । इन सभी लोगों द्वारा यह घोषणा की गई थी कि उनका उद्देश्य ''भारतीयों के द्वारा और भारतीयों की सरकार'' स्थापित करना है । एक प्रकार से सन् १९०५ में उठाया गया यह कदम पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में बहुत बड़ा निर्णय व कार्य था जिसे कांग्रेस ने बहुत बाद में अपनाया । वर्म्मा जी की गतिविधियां दिन प्रतिदिन तीव्रतर होती जा रही थी । मई और जून १९०७ में पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा के इण्डियन सोशियोलोजिस्ट में लेखों से समूचे इंग्लैण्ड में खलबली मच गई । इसका परिणम विचार कर जून, १९०७ में वह पेरिस चले गए और वहीं से भारत के क्रान्तिकारियों का मार्गदर्शन करने लगे । उनके पेरिस जाने के कारण 'इंडियन होमरूल सोसायटी का मुख्यालय भी उनके पास पेरिस

स्थानान्तरित हो गया । १९ सितम्बर, १९०७ को इण्डियन सोशियोलोजिस्ट पत्र पर अंग्रेज सरकार ने पाबन्दी लगा दी । इस पत्र के मुद्रकों श्री आर्थर बोर्सले और एल्फ्रेड एल्ड्रेड को गिरफतार कर लिया गया और उन्हें एक एक वर्ष के कारावास का सजा सुनाई गई । श्यामजी पेरिस में रह रहे थे और वहीं इण्डियन सोशियोलोजिस्ट का प्रकाशन कर रहे थे। सन् १९१४ में जेनेवा (स्विटजरलैण्ड) चले गये । यहां रहते हुए भी आप अपना पत्र अंग्रेजी व फ्रेंच भाषाओं में निकालते रहे। इसी बीच दूसरा विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया । राजनैतिक कारणों से आपको अपने पत्र का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा । इस प्रकार निरन्तर कार्य करते रह कर वह आप वृद्ध हो गये थे । अब आप अधिक सक्रिय भूमिका नहीं निभा सकते थे । अतः देश में चल रहे सत्याग्रह आन्दोलन को आपने अपना समर्थन दिया । ३१ मई, १९३० को लगभग ७३ वर्ष की आयु में जेनेवा में ही महर्षि दयानन्द के इस शिष्य और भारत माता के योग्य पुत्र पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा का निधन हो गया । प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री सरदार सिंह राणा, मैडम भीखाजी रूस्तम जी कामा, जे.एम. पारीख, लाला हरदयाल, विनायक दामोदर सावरकर, मौलवी मोहम्मद बर्कतुल्लाह, नीतिसेन द्वारकादास, मिर्जा अब्बाज उर्फ मुहम्मद अब्बास आदि उनके देशभक्ति के कार्यों में उनके सहयोगी रहे । श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द जी के योग्य शिष्य, संस्कृत व वैदिक साहित्य के विद्वान होने के साथ भारत की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले तथा क्रान्ति को स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन मानने वाले प्रथम चिन्तक, विचारक व अपने विचारों को क्रियात्मक रूप देने वाले आध्य महापुरुष थे । देश की आजादी में उनका योगदान प्रशंसनीय एवं महत्वपूर्ण है । उनके विचारों की अग्नि व कार्यों से देश को अनेक क्रान्ति धर्मी युवक मिले जिन्होंने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश किया था । उनकी आज १५९ वीं जयन्ती पर उन्हें शत शत नमन है ।

...पृ. ७ का शेष
ठीक करके ह्यम साहब ने दूसरा संस्करण निकाला ।

सन् १८८९ की बम्बई की कांग्रेस तक लाजपतराय में कांग्रेस के लिए खूब जोश रहा, पर उसके बाद ठंडा पड़ने लगा। यह उनको प्रतीत होने लगा कि कांग्रेस के नेताओं में देश-हित का उतना ख्याल नहीं, जितना अपनी प्रसिद्धि का है । अभी संदेह का आरम्भ था और उसे वह व्यक्त नहीं कर सकते थे । सन् १८९३ तक वह किसी कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सन् १८८९ के बाद लाजपतराय की कांग्रेस के प्रति उदासीन वृत्ति हो गई । इस शिथिलता के कारणों पर अपने साथियों के साथ गम्भीरतापूर्वक विचार किया जो उन्हें आर्यसमाज और सार्वजनिक जीवन में खींच कर लाए थे । वह इन निष्कर्षों पर पहुंचे ।

(क) कांग्रेस के जन्मदाता अंग्रेज थे, जिन्होंने कि किसी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर कांग्रेस की स्थापना नहीं की । उनका उद्देश्य भारत को स्वतन्त्र कराना न था, बल्कि अंग्रेजों के शासन की जड़ों को मजबूत करना था । वे उसके द्वारा शिक्षित-वर्ग को अपने वश में करना चाहते थे, ताकि वे वैधानिक साधनों का परित्याग करके अंग्रेजों के शत्रु न बन जाएँ । कांग्रेस का खिलौना उन्होंने भारत के शिक्षितवर्ग को इसलिए दिया है कि उसके नेता साल में एक बार इकट्ठे होकर अपने असन्तोष की भड़ास निकाल लें और अखबारों में अपनी प्रशंसा देखकर गद्गद हो जाएँ । शिक्षित-वर्ग अंग्रेज़ों के साथ सीधी लड़ाई नहीं लड़ना चाहता । इस प्रकार के स्वावलम्बन के लिए दूसरा मार्ग पकड़ना पड़ता है ।

(ख) हिन्दू-मुस्लिम-एकता, जिसकी कांग्रेस दुहाई देती है, हिन्दुओं में एकता, धार्मिक उत्साह और संगठन लाए बिना नहीं हो सकती । मुसलमानों में यह बातें पाई जाती हैं । इसलिए दोनों के टकराव में मुसलमानों की जीत होगी । जरूरत इस बात की है कि पहले हिन्दू अपने को मजबूत बनाएँ । अपने भीतर सामूहिक उत्साह और एकता पैदा करें । निर्बल और सबल में एकता नहीं होती ।

कुछ इस प्रकार का लाजपतराय का विश्वास बन चुका था । जव वह १८९३ की लाहौर की कांग्रेस में सम्मिलित हुए जिसकी अध्यक्षता दादा भाई नौरोजी ने की थी । लाजपतराय ने उस कांग्रेस में वह भाग नहीं लिया जिसकी लोग उनसे आशा करते थे । सन् १९०० तक वह किसी कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुए ।

१९०१ की कांग्रेस में जो लाहौर में चार्ल्स ब्रेडला की अध्यक्षता में हुई, लाजपतराय ने फिर सक्रिय भाग लिया । १९०४ में वह महामना गोखले के साथ कांग्रेस के डेपूटेशन में विलायत गए और भारत की राजनीतिक मांगों को व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा अंग्रेजों के सामने रखा ।

लाजपतराय लोकमान्य तिलक तथा अन्य गरमदल के नेताओं की तरह पूर्णात- कांग्रेस की नीति से सहमत नहीं हुए । उनका कांग्रेस में आना-जाना बना रहा ।

सन् १८९२ में लाजपतराय चीफड कोर्ट में वकालत करने के लिए लाहौर आए थे । उनकी राजनीतिक प्रवत्तियों में अस्थायई उपारम आया, परन्तु राजनीति में उनकी रुचि बराबर बनी रही । उनकी राष्ट्रनिर्माण की भावना बहुत व्यापक थी । १८९३ और १९०० के बीच के वर्षों में लाजपतराय डी.ए.वी. कॉलेज, आर्यसमाज और अन्य सेवा-कार्यों में व्यस्त रहे । लाजपतराय अकर्मण्य बैठने वाले मानव न थे । उनमें एक ज्वाला जल रही थी जो बुझाने से न बुझती थी । उनके हिसार के आवास में लिखे उत्तरोक्त शब्द कितने प्रेरणाप्रद हैं । "मुझ पर जिले के अफ़सर प्रसन्न थे । यदि मैं चाहता तो उनको अधिक प्रसन्न करके सब वस्तुएँ प्राप्त कर सकता था, जिनको पाने के लिए बहुत-से पढ़े लिखों ने अपना ईमान बेचा । किन्तु मेरे जीवन का लक्ष्य दूसरा था । जब तक हिसार में रहा बहुत अशान्त रहा । मेरे भीतर से आवाज़ उठती थी कि मैं अपने जीवन के लक्ष्य पर पहुंचने में प्रमाद कर रहा हूँ और अपने समय को व्यर्थ में खो रहा हूं मेरी आत्मा उड़ना चाहती थी । उसको हिसार के सीमित क्षेत्र में बन्द रहना अच्छा न लगता था । वह अपनी शक्तियों के विकास के लिए विस्तृत क्षेत्र ढूँढती थी । धन कमाना और भीख मांगना मेरे जीवन का ध्येय न था। भला ऐसा महामानव कैसे निष्क्रिय हो सकता है । यदि कुछ बातों में उसमें उपेक्षावृत्ति आ भी जाए तो समाज को कोई क्षति नहीं पहुंचती । वह कल्याणपथिक दूसरे कामों में प्रवृत्त रहता है ।

धन का डाह

इस लेख में इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि "सांसारिक धन का कमाना कहाँ तक एक उचित और मनोरंजक काम है ।" मनुजी महाराज अध्याय २ श्लोक-१३ में कहते हैं :-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।।

जो लोग सांसारिक धन दौलतन और विषय सुख में फंसे हुए नहीं हैं केवल वही सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जो व्यक्ति इस उद्देश्य को प्राप्त किया चाहता है उसका कर्त्तव्य है कि वह वेद की सहायता से सत्य धर्म का निर्णय करे, क्योंकि वेदों की बिल्कुल सहायता न लेने से सत्य धर्म का स्पष्ट और पूर्ण निरूपण हो नहीं सकता ।

ऊपर दिये गये श्लोक में मनुजी तीन सिद्धान्त प्रतिष्ठित करते है । पहला, कि अर्थ (धन) की तलाश सत्य धर्म के ज्ञान की प्राप्ति में बाधा देती है, दूसरे काम (विषयसुख) की तलाश भी उसकी प्राप्ति के विरुद्ध है और अन्ततः जो लोग सत्य धर्म का निर्णय करना चाहते हैं उनके लिये वेदों का अध्ययन आवश्यक हैं ।

मनुजी की पहली और दूसरी प्रतिज्ञा को एक ही माना जा सकता है क्योंकि प्रायः हालतों में विषयसुख की तलाश धन की तलाश के साथ ऐसी सम्बद्ध होती है कि जब तक धन की अपरिमित राशि पहले से ही मौजूद न हो विषयसुख की परितृप्ति प्रायः असम्भव होती है । इसलिये हम मनुजी के पहले आधे श्लोक का आशय यह लेते हैं कि धन की अपरिमित तलाश करने से धर्म का सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । यही इस वर्तमान लेख का विषय है । इस श्लोक के दूसरे भाग पर हम किसी और समय विचार करेंगे ।

यदि मनुजी इस वर्तमान उन्नीसवीं शताब्दी में, जिस शताब्दी में कि चारों ओर से जीवित रहने के लिये शुद्ध या "योग्यतमस्य उद्वर्तन" की ध्वनि आ रही है, जो ध्वनि यह कहती है कि धन, या माल, या द्रव्य के रूप में कुछ व्यावहारिक कार्य किया जाय-जीवित होते तो उनका अपने ऊपर लिखे श्लोक के प्रथम भाग में प्रतिष्ठित प्रतिज्ञा का जनता में विघोषित करना एक भारी साहस और वीरता का काम होता, क्योंकि इसका वास्तविक अर्थ यह होगा कि वर्तमान काल के धन की व्यावहारिक तलाश में निमग्न मनुष्य निर्मल धर्म की सच्चाइयों को समझने के आयोग्य है । निस्सन्देह मनुजी का यह वचन बहुव्यापक और अपमान जनक देख पड़ता है । फिर भी इसमें झूठ रत्ती भर नहीं है । क्योंकि धर्म की ज्योति केवल एकाग्रता, योग, मानसिक शान्ति और ध्यान की भूमि पर ही उदय होती है । धन कमाने की सिर तोड़ कोशिश, जिसमें कि आधुनिक व्यावहारिक संसार सिर से पैर तक डूबा हुआ है, इन मानसिक स्थितियों की वृद्धि के लिये ऐसी हानिकारक है कि मग्न व्यावहारिक संसार के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह सच्चाई, धर्म और उच्चतर मनुष्य-प्रकृति के निमित्त अपनी वर्तमान अवस्था पर पुनर्विचार करे और स्पर्धा प्रतियोगिता और उच्चाकांक्षा, के प्रबल नियमों के कारण पैदा होने वाले परिश्रम में कूद पड़ने के पहले एक बार इस पर विचार कर ले । यह सच है कि भौतिक उन्नति के लिये इन प्रबल उत्तेजनों के प्रोत्साहन से मनुष्य सच्चाई के प्रति अपने उच्च कर्त्तव्यों को भूल गया है । इसलिये यह सर्वथा सत्य है कि बड़े-बड़े नामी विज्ञान विशारद भी इस प्रवृत्ति के भयानक और लज्जाजनक परिणामों का अनुभव करने लगे हैं । देखिये कर्नल विश्वविद्यालय के प्रधान डॉक्टर ह्वायट महाशय यों लिखते हैं-

"जब कोई कपट या दौरात्म्य प्रकाश में आता है तो हम बहुत भड़क उठते हैं, और समय की खराबी पर रोना पीटना आरम्भ होता है । परन्तु मेरे मित्रो ! ये कपट और दौरात्म्य समय की खराबियाँ नहीं हैं । ये नागरिक समाज के उपरितल पर निकले हुए केवल फफोले हैं । परमात्मा का धन्यवाद है कि उनको निकाल कर उपरितल पर फेंक देने के लिये अभी काफी जीवन शक्ति मौजूद है । रोग सबके नीचे प्रबल रूप से फैल रहा है ।

वह रोग क्या है ? मेरा विश्वास है कि यह सबसे पहले सच्चाई को सच्चाई स्वीकार करने में उदासीनता है, दूसरे संशय, इससे मेरा अभिप्राय इस या उस मत को स्वीकार करने में अयोग्यता से नहीं, प्रत्युत उस संशय से है जो इस बात को मानने से इन्कार करता है कि संसार में कोई ऐसी प्रबल, विशाल और पुण्यमय शक्ति है जिसके बिना कि हम सत्य को कदापि नहीं पा सकते । तीसरे नास्तिकता, इससे मेरा अभिप्राय इस या उस प्रधान कर्म के प्रति व्यक्ति के अभाव से नहीं, प्रत्युत उसके प्रति भक्ति के अभाव से है जो कि सब धर्मों का आधार है, अर्थात् यह भाव कि पवित्र और पुण्यमय सब कहीं एक समान है और अन्ततः जड़वाद, जिससे मेरा अभिप्राय ब्रह्माण्ड की इस या उस वैज्ञानिक कल्पना (थ्यूरी) से नहीं, बल्कि पुण्य के केवल वाह्य छिलके और भूसे के प्रति भक्ति से, स्थान और धन के लिये उस संग्राम से, केवल भौतिक सुख और सम्पत्ति के प्रति उस श्रद्धा से जो कि मानव-हृदय से सारी देश प्रीति को नष्ट कर देती है और जो कि उस भाव के अत्यन्त प्रतिकूल है जिससे वैज्ञानिक साधन को बल मिलता है ।"

पाठक, यह एक नामी विज्ञान शास्त्री की राय है कि समाज चार धातक रोगों, अर्थात् उदासीनता, संश्य, नास्तिकता, और जड़वाद से पीड़ित है । यह स्पष्ट ही है कि इन सब का कारण प्रबल प्रकृति और लक्ष्मी की रिवाजी पूजा है । उत्साहशील पाठक के चित्तपट पर यह सच्चाई अधिक सुगमता से अंकित करने के उद्देश्य से आओ हम वकीलों, वैद्यों, साहूकारों, वणिकों, इन्जीनियरों, ठेकेदारों, पादरियों, अध्यापकों, क्लर्कों और आजकल के असंख्य प्रचलित व्यवसायों से जीवन का निर्वाह करने वाले लोगों पर, जिनकी कि हमारा अपने देश में भी कुछ कमी नहीं, दृष्टि डालें । इन सबका विशेष उद्देश्य यही है कि अपने अपने व्यवसायों के द्वारा चमकते हुए सोने का ढेर इकट्ठा करें । यह सोना प्रतियोगिता के रोग में ग्रस्त व्यावहारिक मनुष्य की विकृत दृष्टि को अति लुभायमान प्रतीत होता है । इन खेदजनक व्यवसायों के अस्तित्व के लिये उपकारशीलता या युक्तिसंगत उपयोगिता के आधार पर कोई युक्ति संगत समाधान ढूँढ़े से भी नहीं मिल सकता । इन व्यवसायों का कदापि जन्म न होता, यदि ये कुत्सित धन को लाने वाले न होते । मक्खियाँ गुड़ा की डली पर इस कसरत से इकट्ठी होकर नहीं भिनभिनाती जिस कसरत से कि वकील और व्यापारी, वैद्य औ ठेकेदार लक्ष्मी के मन्दिर में इकट्ठे होते हैं । यह बात अक्षरशः

सत्य है कि रुपया एक ऐसा ईश्वर है जिसकी पूजा संसार के स्वामी ईश्वर से भी बढ़ कर हो रही है । केवल इतना ही नहीं, धन का डाह प्रायः सभी को लग रहा है । प्रत्युत सांसारिक धन का कमाना ही प्रधान विषय बन रहा है । एक ओर एक सुधारक होने का दम भरने वाला व्यक्ति स्वदेश की अत्यन्त दरिद्रता, और उसके फलस्वरूप चारों ओर फैले हुए क्लेश, पाप और अपराध का

President White's Address, appendix to Lectures on "Light", by G. Thyndal Third edition 1892, pp.238-239.

दुखड़ा रो रहा है । स्वदेश को कला कौशल से शून्य देखकर उसे भारी दुःख हो रहा है । उसे सदा यही चिन्ता रहती है कि किसी प्रकार उसके देश की भौतिक समृद्धि के साधनों में सन्तोषजनक उन्नति हो सके । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह बड़ी मुश्किल से एक संस्था स्थापित करता है । परन्तु धन की पर्याप्त सहायता न पहुँचने के कारण वह इसको चला नहीं सकता । इस विफलता से उसे अवर्णनीय दुःख होता है । वह सुधारक एकान्त में बैठकर यों सोचता है :-

हमारा देश निर्धन है, क्योंकि हमारे पास धन नहीं, पाप और क्लेश फैल रहे हैं, क्योंकि हमारे पास धन नहीं कला कौशल की उन्नति नहीं हो सकती क्योंकि हमारे पास धन नहीं, संस्थाएँ दीर्घजीवी और सफल नहीं हो सकती क्योंकि हमारे पास धन नहीं ।

चारों तरफ से धक्के खाकर यशस्काम सुधारक फिर धन के प्रश्न की ओर आता है । वह अपनी विशाल भौतिक बुद्धि को इसी प्रश्न के हल करने में लगाता है । अब उसको यह विचार सूझता है कि केवल व्यक्तिगत उत्साह से ही उसका देश धनवान हो सकता है, पर व्यक्ति बड़े-बड़े कामों को बिना धन के कैसे हाथ में ले सकते हैं ? शायद यह प्रश्न और तरह से भी हल हो सकता है । वह स्वदेश में कलों का प्रचार करना चाहता है जिनसे धन दौलत खूब पैदा हो । परन्तु कलें महँगी हैं, और एक निर्धन देश उन्हें खरीद नहीं सकता । या दैवयोग से हमारा सुधारक रक्षित व्यापार का पक्षपाती (प्रोटेक्शनिस्ट) है तो वह कदापि यह पसन्द न करेगा कि स्वदेश का धन कलों आदि में बाहर जाए । उसकी यही कामना होगी कि स्वदेशी शिल्प कला की उन्नति और वृद्धि हो । सुधारक के दुर्भाग्य से प्रज्ञाहीन मानव-प्रकृति सुलभता पर गिरती है, इसलिये स्पर्धा सुधारक के ऐसी सावधानी से खड़े किये हुए व्यापार रक्षा के भवन को अपने भयानक कुल्हाड़े के साथ भूतलशायी कर देती है ।

अब जड़वादी तत्त्ववेत्ता को लीजिये । सभ्यता कैसी मनोहर वस्तु है । अतएव वह अपना दार्शनिक ज्ञान छाँटने की बाह्य रीतियों के अनुसार सभ्यता के प्रत्येक उपादान को अलग अलग करता है और मालूम करता है कि सभ्यता की सारी रचना धन के आधार पर है । वाष्पीय नौका (स्टीमर) लोकोमोटिव इंजन, तार और डाक के प्रबन्ध, छापेखाने और मेहनत बचाने वाली कलें, सब धन के शक्तिशाली और आश्रय देनेवाले हाथ के विना केवल कोयला, लोहा, और रेत जैसी निकम्मी चीजें ही रह जायँगी ।

अकेले सुधारक और तत्त्वज्ञानी की ही यह बात नहीं । राजनीति विशारद, राजमंत्री पत्र सम्पादक, सार्वजनिक वक्ता सब के सब अन्त को इसी धन की समस्या पर आकर गिरते हैं। इस प्रकार सारा संसार क्या बातचीत और सम्भाषण में, क्या व्याख्यानों और सार्वजनिक सभाओं में, क्या गुप्त ध्यान और विचार की अवस्था में, बारम्बार ''धन, धन'' की ही ध्वनि निकालता है । यहाँ तक कि समाज की सारी रचना गूँज रही है और सारा वायुमण्डल इसी प्रकार के सभासों और शब्दों से भर रहा है ।

पाठक इस सभ्यता का दम भरने वाली समाज की अल्पकालिक दौड़ धूप और क्षणिक चेष्टा को ध्यान पूर्वक देखिये । क्या आप नहीं देखते कि कम से कम पंचहत्तर प्रतिशतक मनुष्य जो सभ्य संसार में ख्याति लाभ करते हैं, उनका दारोमदार अधिकार की लालसा, भोगों (इन्द्रिय सुख) से प्रेम, मान से प्रीति, बड़े बनने की कामना, प्रतिष्ठा से प्रेम और दिखलावे से प्रीति पर होता है ? क्या कारण है कि स्वामी अपने सेवकों से आज्ञा का पाल कराता है ? क्या कारण है कि लोग सदा अपने से उच्च समाज के मण्डलों में विचरना चाहते हैं ? यह क्या बात है कि इतने रईस और राजे, रायबहादुर, या सरदार बहादुर की केवल खाली उपाधियों की प्राप्ति के लिये व्यर्थ भारी भारी खर्च प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं ? केवल अधिकार, उच्च पदवी, मान, प्रतिष्ठा दिखलावा और आनन्द के लिए । और कौन सा शक्तिशाली इञ्जन है, जो इन नीच, अपरिमित और स्वार्थपर कामनाओं के पूरा करने के लिये साधन उत्पन्न करता है ? वह धन है ।

फिर समाज के निचले स्तर की ओर ध्यान दीजिये, (निचले स्तर से मेरा अभिप्राय इन लोगों से है जो आचार की दृष्टि से नीचे हैं जरूरी नहीं कि वे सामाजिक दृष्टि से भी नीच हों) । देखो, सभ्य जीवन नामधारी सजीव शक्तियों की अन्धी दौड़ में मत्सरता, ईर्ष्या, स्पर्धा और प्रतियोगिता के भाव क्या काम कर रहे हैं ? प्रतिदिन बढ़ती हुई मुकदमाबाजी शिष्टजनों के ए दिन झगड़े, पुलिस और न्यायालयों की खराबियाँ, प्रतियोगिताओं में उम्मीदवारों को सफलता के लिये अपनी जान को जोखिम में डालना ये सब इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि मत्सरता, ईर्ष्या, सर्धा और प्रतियोगिता के नीच भावों ने जो कि मनुष्य के लिए कदापि उचित नहीं, आधुनिक समाज में भारी गड़बड़ मचा रखी है । आप को ऐसा मनुष्य कहाँ मिलेगा जिसने अपनी उपकारशीलता से क्रोध और प्रतिहिंसा को दबा दिया हो ? इस सभ्य समाज में ऐसा मनुष्य मिलना बुहुत कठिन है । शायद कोई दरिद्रता से पीड़ित, दुःखों से दबा हुआ-जिसको अपनी विद्रोही प्रकृति की आज्ञाओं का पालन करने के लिए साधन नहीं मिलते, परन्तु जो दुर्भाग्य से निराशा और विषाद में फँस गया है-दुःस्वप्न और अशान्ति से जीवन के दिन काटता इधर-इधर मिल जाए । यदि उसमें निर्दय स्य समाज से बदला लेने की शक्ति होती तो वह कदापि इससे न चूकता, पर वह विवश है । तो क्या ये सब शक्तिशाली धन के तेज से अपील नहीं करते ?

अनुकरण एक प्रमुख नियम है । इसी पर आधुनिक समाज का विशाल भवन खड़ा किया गया है । अनुकरण वह खम्बा है जिस पर कि समाज का प्रबल यंत्र ठहरा हुआ है । रीति, रिवाज, प्रचलित प्रणाली की चोट, और देह स्वभाव के डर का तो कहना ही क्या, जो सबके सब किसी न किसी प्रकार से पैतृक नियमों-अनुकरण से पैदा हुए हैं, धार्मिक विश्वास की बातों में या सम्मति देने की अवस्थाओं में भी संसार के नब्बे फीसदी मनुष्य उसी सर्वव्यापक नियम अनुकरण के अधीन है। अनुकरण की उसी वानर सदृश कार्य शक्ति के विषय में जे.एस. मिल साहब लिखते हैं-

हमारे समय में समाज की उच्चतम श्रेणी से लेकर नीचतम श्रेणी तक प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार रहता है मानो वह किसी विरोधी और भयानक नीतिशास्त्रता की देख-रेख के

नीचे हैं । न केवल उन्हीं बातों में जिनका सम्बन्ध कि दूसरों से है प्रत्युत उन बातों में भी कौन जिनका सम्बन्ध कि खुद उन्हीं से है कोई व्यक्ति या परिवार अपने मन में प्रश्न नहीं करता कि मैं किस बात को अच्छा समझूँ ? या कौन सी बात मेरी प्रकृति या अवस्था के अनुकूल होगी ? या मुझमें जो सर्वोच्च और सर्वोत्तम है वह स्वतन्त्र कैसे रहेगा, या उसकी परिवृद्धि और विकास कैसे हो सकेगा ? वह अपने मन में प्रश्न करता है कि मेरी प्रतिष्ठा के अनुरूप क्या है ? मेरी स्थिति और आर्थिक अवस्था के लोग प्रायः क्या करते हैं ? या (इस से भी बुरा) मेरे से ऊँची स्थिति और अवस्था के लोग प्रायः क्या करते हैं ? मेरा प्रयोजन यह नहीं कि वे रिवाज को प्रवृत्ति से अच्छा समझते हैं। परन्तु वे रिवाज के सिवा प्रवृत्ति को और कोई वस्तु ही नहीं समझते । इस प्रकार उनका मन अपने आप अनुकरण का जुआ अपनी गर्दन पर रख लेता है । मनोरंजन की बातों में भी वे सबसे पहले अनुरूपता का ख्याल करते हैं । वे समुदायों में रहते हैं । जो काम प्रायः लोग करते हैं उन्हीं में से वे किसी एक को पसन्द करते हैं । रुचि की विशेषता और आचरण की विलक्षणता से वे ऐसे भागते हैं मानो कि वे अपराधी हैं । यहाँ तक कि अपनी ही प्रकृति का अनुकरण न करने की चोटों से उनमें अनुकरण करने के लिये कोई प्रकृति ही नहीं रहती । उनकी मानुषीय धारण शक्तियाँ कुम्हलाकर नष्ट हो जाती हैं । वे किसी प्रबल आकाँक्षा या प्राकृत सुख का आनन्द लेने में असमर्थ हो जाते हैं । और न ही उनमें प्रायः कोई अपनी राय या निज विचार होते हैं । अब बतलाएँ कि क्या मानवप्रकृति की यह अवस्था वांछनीय है ?''

यह है अनुकरण की प्रबल शक्ति । कौन है जो इसके अलंघनीय प्रभाव का सामना कर सके ? क्या कोई व्यक्ति निमग्न व्यावहारिक संसार को वकीलों, वैद्यों, इन्जीनियरों, ठेकेदारों और अन्य व्यसायियों को-धन के लिये पागल हुआ देख सकता है ? क्या कोई मनुष्य तत्ववेत्ताओं, राज-नीतिज्ञों, और देशानुरागियों को तेजोमय सुवर्ण का एक स्वर होकर गुणगान करते हुए सुन सकता है ? क्या कोई सभ्यता के उत्सुक प्रशंसक को लक्ष्मी देवी की सर्वशक्ति सत्ता को अंगीकार करते हुए देख सकता है ? क्या कोई सांसारिक सुख, शान्ति और हर्ष की गर्वित अभिलाषाओं के मन्दिर में जल चढ़ाते देख सकता है ? क्या कोई क्रोध, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या, स्पर्धा और मत्सरता इन सबको अपनी सन्तुष्टि के साधनों की प्राप्ति के लिये दौलत के दरबार में हाथ बाँधे खड़ा देख सकता है ? क्या कोई व्यक्ति ऐसा है जो यह सब कुछ देखता हुआ भी सोना रूपी परम प्रतापी सम्राट् के आगे राजभक्ति की सौगन्ध न उठाए ?

अनुकरण की चोट से मनुष्य, धन की तलाश में दाएँ से वाएँ धक्के खाता है । समाज एक भँवर के सदृश है जिसमें जीवन रूपी समुद्र के सभी तैराक फँस जाते हैं, और जोर से इधर-उधर फेंके जाते है । आज यहाँ गिरे तो कल वहां पड़े-यहां तक कि मनुष्य केवल एक धन कमाने वाली मशीन बन जाता है । क्या समाज की यह दशा शोचनीय नहीं है ?

देखो धन का प्रेम उच्च भावों का कितना खून करता है ? कर्त्तव्य और स्वार्थ की आपस में मुठभेड़ है । धन की निग्रहकारिणी शक्ति सब बुराइयों की रक्षा करती है । उच्चतर मानव प्रकृति की आज्ञाओं की कुछ भी परवाह नहीं की जाती और उनको पाँव तले रोंदा जाता है । वैद्य और डाक्टर लोग शरीर धर्म विद्या के ज्ञान के प्रसार और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का जनता में प्रचार के स्थान में सादा से सादा रोगों और औषधियों को विदेशी नामों के वेश में छिपाते हैं और उपचार लेखों (नुसखों) के गुप्त संकेत नियत करके उनके मिलाने और तैयार करने की विधियों को प्रकट नहीं होने देते । वैद्यों का असंख्य दल जो इस समय हमारे देश में मौजूद है, बुद्धिमत्ता के साथ रोगों की जड़ को उखाड़ने और तन्दुरुस्ती की सुन्दर कली को खिलाने के स्थान में दिन रात बड़े यत्न से यही प्रार्थना करता है कि धनवान् और शक्तिशाली मनुष्य सदा कसरत से रोगग्रस्त हुआ करें । वकील लोग शान्तिमय मित्रता के भाव उत्पन्न करने और मेल मिलाप को बढ़ाने के स्थान में झगड़े रगढ़े को बढ़ाते और प्रतिहिंसक विरोध या गर्वित आवेश को चमकाते हैं । वणिक जनता के प्रयोजनों और आवश्यकताओं को पूरा करने और माँग और माल के नियम पर न्यायपूर्वक कार्य करने के स्थान में जो कुछ उन्हें मिल सके, सब लूट लेते हैं, बहुत थोड़ा देते हैं, अपने व्यापार की व्यवस्था पत्र गुप्त रखते हैं और अनभिज्ञ ग्राहको को अशुद्ध व्यापार की व्यवस्था पत्र गुप्त रखते हैं और अनभिज्ञ ग्राहकों को अशुद्ध माल देकर धोखा देते हैं । यहाँ तक कि उपदेशक और पादरी भी जिनका काम सीधी सादी सच्चाई और आचार की सांत्वना देने वाली बातें बताना और धार्मिक पुण्यशीलता और आध्यात्मिक प्रकाश के पवित्र सुखों का फैलाना होना चाहिये, धन कमाने की बड़ी बड़ी युक्तियाँ पढ़कर ही प्रमुदित होते हैं, और अपने दीर्घ, अन्धकारमय, दम्भ दूषित धर्मोपदेशों को गुह्य प्रलाप के साथ लपेट देते हैं । ये ऐसे उपदेश होते हैं जिनको कि वे आप भी न समझते हैं और न समझ सकते हैं ।

इस प्रकार इतना ही नहीं कि समाज में जो रुपया इकट्ठा करने का सहजावबोध पैदा हो गया है, उसने वैद्य और उपदेशक सबको एक जैसा अपने कर्तव्य और व्यवसाय से पथभ्रष्ट कर दिया है । इससे भी अधिक और घोर पाप है जिनमें कि समाज केवल धन प्राप्ति के लिये ही डूबा हुआ है । एक धनवान् मदिरा विक्रेता या एक धनी तम्बूका या अफीम बेचनेवाला बेरोक टोक मज़े से समाज में रहता है और उपने व्यवसाय के द्वारा फूलता फलता है, पर केवल धनाढय होने के कारण ही कोई उसे घृणा या उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता । सहस्त्रों निर्धन निरपराध लोग उन अपराधों के लिये दोषी ठहराये जाकर जिनको कि उन्होंने कभी भी नहीं किया, दण्डित किये जाते हैं । परन्तु एक धनाढ्य अपराधी साफ अपराध प्रमाणित हो जाने पर भी रिश्च, बात या सिफारिश रूपी शस्त्र रखने के कारण सर्वथा बच जाते है । यद्यपि कवि तत्त्वेता पुकार २ कर कह रहे हैं कि सब मनुष्य बन्धु हैं, यद्यपि विशुद्ध धर्म अपने निर्वल धीमे स्वर से यह उपदेश कर रहा है कि हम एक उच्च पिता की सन्तान हैं फिर भी धनी लोग निर्वलों और निध४नों पर अपने लगातार अत्याचार उत्पात, अन्याय और दौरात्म्य से ऊँच नीच पैदा कर रहे हैं । धन के इस समारोह के कारण एक उपाधि धारी विद्यार्थी भी अपनी रुचियों को, प्रवृत्तियों को यदि कोई उसकी है, छोड़ देता है, और अपने अभिलषित व्यवसाय के लिये अपनी वास्तविक अयोग्यता को भलीभाँति जानता हुआ भी, डाक्टरों इञ्जीनियरों, वकालत और नौकरी पर पिल पड़ता है, और अपने दुष्ट व्यवसाय के परिणामों से संसार में तूफान मचा देता है । पत्र-सम्पादक जो अपने आपको लोकमत का नेता कहते हुए कभी लज्जित नहीं होता, निःसंकोच होकर अपनी आत्मा को बेच डालता है, और अपने सहायक दल का गुण गाता है

चार पत्रों के हीन गुण साहित्य, क्योंकि ार पत्रों का साहित्य बहुत कम सुधारने , पुनर्जीवित करने वाला, या उच्च करने होता है - को पढ़िये । आप देखोगे कि ा कितना थोड़ा भाग निर्दोष उपदेश, नेतृत्व या न्याय और सत्य के अर्पण ा है, और कितना अधिक ईर्ष्या, भूयिष्ठता, जातीय और स्वार्थ पर पक्षपात जानबूझकर मिथ्या वर्णन से भरा रहता उनकी सारी पुण्यशीलता और निरोपेक्षता ल दिखलावे और व्यवहार के लिए होती और वास्तव में यह नीच स्वार्थपरता और ाड़ालू साम्रप्रदायिकता के बदले में खरीदी ती है । क्या यह मनुष्यत्व है ?

ऊपर के विचारों से यह परिणाम अपने ाप निकलता है कि धन की प्राप्ति उन्माद ा तरह का एक रोग है । जब तक इस ाश्वव्यापी रोग का, जिसने कि इस समय माज को धेर रखा है, और सदाचार और ार्मिक भावों की जड़ को काट रहा है, ाधुनिक रोगनिदान-शास्त्र में उल्लेख न होगा ाह शास्त्र अधूरा ही रह जायेगा ।

इस रोग का नाम 'धन का डाह' रखना चाहिए, क्योंकि उन्माद के अन्य रूपो की तरह इसमें भी मानसिक समता नष्ट हो जाती है और विचार असंगत हो जाते हैं । इससे एक ही दिशा में अपरिवर्तनीय पक्षपात उत्पन्न हो जाता है । जो मानव प्रकृति को चेष्टा और उमंग के अन्य सब मार्गों से हटा लेता है और अन्ततः यह सारी शारीरिक रचना की ऐसी अत्युत्तेजित दशा बना देता है जो कि संयम या व्यापारों के स्वाभाविक अभ्यास से असंगत होती है । हैजा (विषूचिका) या इसी प्रकार के अन्य छूत के रोगों की तरह यह अपने सहायकारी बीज बहुलता से और दूर तक फैलाता है । इन चीजों को ग्रहणशील मानद-शरीर सुगमता से ग्रहण कर लेता है और संक्रामक रोगों की तरह यह भी पिता से पुत्र में, भाई से भाई में, और साथी से मित्र में सुगमता से संक्रमित हो जाता है । इसलिए-

धन का डाह उन्माद के सदृश एक रोग है जो बहुत शीघ्रता से उड़कर लगता है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चला जाता है, असाध्य या दुःसाध्य है, और अतीव उग्र है ।

इस विचार से कि हमारे गुणग्राही पाठकों को रोग-निदान में किसी प्रकार का कष्ट न हो हम नीचे इस रोग के मोटे-मोटे चिह्न देते है । इसके लक्षण ये हैं-तर्पणातीत पिपासा या यशस्तृष्णा, सदा भूखा आमाशय एक कफमय (उदासीनता से भरा हुआ) और कर्कश (इचड़चिड़ा) स्वभाव, पहले दर्जे की इन्द्रिय सूक्ष्मता और शीघ्रोपित्य, पाशविक और मानुषी विकारों का प्रबल अन्तर्दाह, अशान्ति, निद्रा का अभाव और चिन्ता, गर्व, शक्ति और ज्वर की सी अवस्था के आक्रमण, नैतिक और आध्यात्मिक कार्यशक्तियों का पक्षाघात, इन्द्रियातीत या अलौकिक अनुभवों के प्रति जड़ता, अधिक खाने अधिक पहनने, आलस्य, विलासिता और मुख के लिए सीमातीत लालसा, बाह्य स्वाधीनता का बनावटी रूप व्यक्तिगत निर्बलता और क्षीणता ।

अब हम अपने उत्सुक पाठकों से सचाई, न्याय और साधुता के नाम पर पूछते हैं कि क्या, जो रोग मनुष्य को पागल बना देता है, जो रोग कि वेदान्त की हँसी उड़ाता, चिन्ताशील ध्यान या तत्वज्ञान को घृणा की दृष्टि से देखता, और ब्रह्मविद्या को अव्यवहार्य असाध्य और अयुक्त समझ कर उसका परित्याग कराता है, जो रोग मनुष्य जाति के नैतिक, युक्तिसंगत और आध्यात्मिक रीति से उन्नत और उच्च करने के सभी यत्नों को कल्पनात्मक बताकर कलंकित कराता है, जो रोग आत्मज्ञान को असंभव कहता है, जो रोग सदाचार को गिराकर औचित्य की सतह पर ले आता है, जो रोग विश्वपति की पूजा के स्थान में मूर्तिपूजा के एक अतिदीन और अतिनिकृष्ट रूप में तांवे, चाँदी और सोने की पूजा सिखाता है, जो रोग यह बतलाता है कि मनुष्य में खाने-पीने और रुपया कमाने के सिवाय और कोई प्रकृति नहीं, एक बार हम फिर पूछते हैं कि क्या ऐसे रोग को स्वयं जड़ से उखाड़ कर न फेंक देना चाहिए और इसको इस प्रकार न जला देना चाहिए कि यह फिर न उत्पन्न हो ? क्योंकि जब तक यह रोग विद्यमान है, सदाचार, धर्म, सच्चाई और तत्वज्ञान कोई भी नहीं रह सकता ।

धार्मिक विचारों के प्रवाह का नियम, निर्दोष मन, निरपेक्ष, सत्य पूर्ण प्रकृति, शान्त और अक्षुब्ध भाव, बलवान् उद्यमी बुद्धि और समाहत ध्यान है । पर दौलत के लिए अन्धाधुन्ध दौड़ धूप इन्हीं सद्गुणों की जड़ को खोखला कर डालती है । चिन्ता और अभिमान, जो रुपया पास होने के कारण अवश्य उत्पन्न हो जाते है, मन की शान्ति को नष्टक कर डालते हैं । जटिल सम्बन्ध में अनुराग, जो शक्ति पास होने से (रुपया शक्ति है) सदा उत्पन्न हो जाते हैं, थोड़ी बहुत रही-सही निरपेक्षिता और सत्यवादिता को भी दूर कर देते हैं । यहाँ तक कि चिन्ता के कारण अशान्त गर्व के कारण, कलहकारी और स्वार्थ के कारण पक्षपाती होकर मनुष्य एकाग्रता और निर्मल विचार दोनों की शक्ति को खो बैठता है ।

अहो ! स्वाधीनता, सच्ची और प्रकृत स्वाधीनता जिसमें मनुष्य अपनी परिस्थितियों और अवस्थाओं का दास नहीं रहता, प्रत्युत उनका स्वामी बन जाता है, कैसी उन्नति और सम्मान को देने वाली है और फिर भी मनुष्य में इस आनन्दमय अवस्था की वृद्धि और भाव को और कोई वस्तु इतना आघात नहीं पहुँचाती जितना कि धन का पास होना । जो मनुष्य अपने धन का घमण्ड करता है वह अवश्य ही अपने धन का दास है। दृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त मनुष्य सदा अपनी तन्दुरुस्ती का आनन्द लेता है । वह अपनी प्रकृति शक्ति से अनभिज्ञ नहीं और उस शक्ति के प्रयोग में जिस स्वतन्त्रता का अनुभव वह करता है । उस पर उसे यथार्थ अभिमान है, ऐसे मनुष्य को जब कभी कहीं जाने की कामना होती है तो वह अपने जंगम उपकरण (टांगों) को काम में लाता है, जब वह अपने बल और वीर्य को तरोताजा करना चाहता है तो वह शारीरिक व्यायाम करता है, जब कभी उसे विश्राम की आवश्यकता होती है तो वह आकाश के शुद्ध वायु का सेवन करने या प्रकृति के दृश्यों का आनन्द लूटने के लिए बाहर चला जाता है, जब कभी उसे एक सच्चे मनुष्य की तरह अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा होती है तो वह ध्यानावस्थित होकर उच्च विचारों को बढ़ाता है, जब कोई रोग या गर्मी और सर्दी की अधिकता उसको सताती है तो वह अपनी स्वयं चिकित्सक प्रकृति की निन्द्रित और स्थित पालक शक्तियों को जगाता है। सारांश यह है कि जिन पदार्थों की उसको आवश्यकता पड़ती है वे प्रकृति ने स्वयं ही उसे पर्याप्त परिमाण में दे रखे हैं । पर धनाढच का सारा दारोमदार द्रव्य की भड़कीली चीज पर ही है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने के लिए उसे गाड़ी का प्रयोजन है, वह पैदल नहीं चल सकता । स्वाभाविक स्वास्थ्य की चमक दमक के स्थान पर उसमें औषधियों के प्रभाव से या चिकित्सक वैद्यों की सहायता से तोंद निकली होती है, तन्दुरुस्त आमाशय और सादा भोजन होने के स्थान पर उसका भोजन देर से पचने वाला, उसका आमाशय बिल होता है, जिसे उसे पचाने के लिए ऊपर से तेज मदिरा पीने की

आवश्यकता होती है । बाहर निकल कर प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटने के स्थान वह अपने कमरे की दीवारों पर निर्जीव निःशब्द चित्र लटकाता है । वह स्वाभाविक तितिश्रा के स्थान में पंखों को शीतल करने वाली शक्ति, आग को गरम करने वाला विशेष गुण, शरबतों को तरोताजा करने वाली शक्ति और मदिरा के उत्तेजित प्रभाव के पूर्णतः आश्रित रहता है । क्या यही स्वाधीनता है, जिसका अनुभव मनुष्य को करना चाहिए ।

इस प्रवृत्ति के परिणाम केवल इसी सीमा तक नहीं बढ़े हैं। आधुनिक सभ्यता धन की गिरगिट की भाँति रंग बदलने वाले गुण के कारण पैदा हुआ एक दृश्य चमत्कार इस प्रवृत्ति के विश्रुत कार्यों से भरी पड़ी है । प्राचीन संसार ने बर्बर और असभ्य पैदा किए थे, क्योंकि वे वर्षा और वायु से अस्थायी रक्षा के लिए बनाई हुई केवल कुटियों या सुफाओं में प्रायः नंगे रहने वाले मनुष्य प्रकृति के बलवान् नमूने थे, क्योंकि उनकी आवश्यकता थोड़ी होने के कारण उनकी कलाएँ सादी और गिनती की थी । क्योंकि प्रबल स्मरण शक्ति रहने के कारण उनका ज्ञान वही था जिसे वह कण्ठस्थ कर लेते थे, और प्रमाण देने के लिए उनकी पुस्तकें या पुस्तकालय उनकी स्मृति की तख्ती का अभ्रान्त लेख था, क्योंकि निर्मल मस्तिष्क रखने के कारण दृष्टान्त ऐसे साधारण और प्रसिद्ध होते थे कि उनकी युक्ति उथली प्रतीत होती है । क्योंकि बुद्धि के तीक्ष्ण होने के कारण वे उपमिति से युक्ति देते थे, इसलिए अवलोकन ही उनका ज्ञान था । सारांश, संसार जैसे मनुष्य आजकल उत्पन्न करता है वे उनसे सर्वथा भिन्न थे । आधुनिक संसार ऐसे सभ्य मनुष्य पैदा करता है जो "मनुष्य प्रकृति के दुर्वल नमूने है ।" उनकी वास्तुविद्या विशाल और अधिक स्थायी है । इनकी कलाएँ जटिल और बहुसंख्यक हैं । इनकी स्मरण शक्तियाँ निर्बल, दूषित और अधिक अविश्वसनीय हैं । इनके पुस्तकालय इतने भारी हैं कि एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में ले जाए नहीं जा सकते । इनके उदाहरण भारी और अपूर्ण है, क्योंकि उनको बपतिस्मा की रीति पर अस्पष्ट, संस्कृत और परिभाषिक भाषासरणि से वैज्ञानिक रंग में प्रकट किया जाता है । इनका तर्क आनुमानिक है, इनकी परीक्षा प्रयोग है, इनकी युक्ति सम्भाव्यताओं की कल्पना है । यह है नैतिक और मानसिक सभ्यता पर धन का बहुविस्तीर्ण प्रभाव । यदि धनाढय होने में इतनी दुष्ट प्रवृत्तियाँ और संदेहजनक परिणाम भरे पड़े हैं, तो इससे यह कल्पना न कर लेनी चाहिए कि जो प्रायः इसका उलट अर्थात् दरिद्रता कहलाती है, उसमें इनसे कुछ कम है । क्योंकि संस्कृत में कहा है -

बुमुक्षितः किं न करोति पापम् ।

"ऐसा कौन सा पाप है जो दरिद्रता न करती हो ।" दरिद्रता से हमारा अभिप्राय उस कठिन भारी धातु के अभाव से नहीं जो दूसरे तौर पर सोना कहलाती है, (क्योंकि ताँबा, सोना, चाँदी ऐसे निर्जीव पदार्थों का सजीव आत्मा की शारीरिक, मानसिक और नैतिक समृद्धि पर क्या परिणाम हो सकता है) प्रत्युत हमारा अभिप्राय मन की दरिद्रता से है । क्योंकि जहाँ केवल धातु के अभाव की ही शिकायत हो वहाँ उसकी पूर्ति शारीरिक परिश्रम और मस्तिष्क चिन्ता की चिन्ताशील युक्ति से भलीभाँति की जाती है । परन्तु मन के आध्यात्मिक और सञ्चय में जो कि सारे उद्योग, बुद्धि प्रभाव, भद्रता और उपभोग सबका एक सा आधार है, प्रकृत द्रव्य की कमी कैसे पूरी हो सकती ? संसार की भूल इस बात में है कि उसने सांसारिक गुह्य स्थूल वस्तुओं को किसी काम का ख्याल कर लिया है, और ऐसे द्रव्यों के वाहुल्य को सम्पत्ति का चिह्न समझ लिया है । सच्ची सम्पत्ति आत्मा का धन, और मन का चतुर्विध सहज गुणों से भरा होता है । वे सहज गुण ये हैं - स्वास्थ्य, इच्छा और शारीरिक बल का गुण, मानसिक शक्तियों का गुण, नैतिक और भावप्रधान सञ्चय का गुण । जिस व्यक्ति को इन मानसिक गुणों में से उचित भाग मिला है उसे चाहिए कि धातु के छोटे दो कठिन और गुरु चमकते हुए टुकड़ों को जो सिक्के के नाम से प्रसिद्ध हैं, तुच्छ समझ कर त्याग दें । क्योंकि मन की इस स्वाभाविक शक्तियों से काम लेने के अतिरिक्त और कोई स्वाधीनता, सच्ची स्वतन्त्रता और माहात्मय नहीं । बुद्धि ही सर्वोपरि नियम है । मदोत्कट सिंह, महाकाय हस्ती, उग्र शार्दुल, भोंकने वाला भेड़िया, रक्त पिपासु शिकारी कुत्ता, मनुष्य की निग्रहकारिणी श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा धमकाये जाते हैं, वन के उच्छृङ्खल पशु पालतू बनाये जाते हैं, खानों-से कठिन चट्टानें पृथक् की जाती हैं, पृथिवी के पेट से बन्द खजाने निकलवाये जाते हैं, प्रबल नदियों के मार्ग बदल दिया जाते हैं, जल प्रपातों की तीव्र शक्ति छीनकर घूमने वाली कलों को दी जाती है, आग और पानी से प्रतिक्षण ४० या ५० मील प्रति घण्टा के घोर वेग से लाखों मन बोझ खिंचवाया जाता है, आकाशस्थ बिजली को नोकदार वज्रशूलों के द्वारा कैद कर लिया जाता है, ये सब काम श्रेष्ठ बुद्धि के पथ प्रदर्शन और उपदेश के प्रताप से ही किये जाते हैं। केवल भौतिक ब्रह्माण्ड या पशु जगत् ही इस प्रकार बुद्धि की शक्ति द्वारा पराजित नहीं हुआ । स्वच्छन्द राजत्व धनवानों के प्रबल राज्य, जन्म के अभिमान, और वंश के गर्भ को भी तर्क के प्रजातन्त्र, "मन के राजतन्त्र" या "बुद्धि के लोकसत्ताक" शासन ने नीचा दिखलाया और अधीन किया है । और इससे बढ़कर जिन विद्यार्थियों के बाल वृद्धावस्था के कारण श्वेत हो चुके हैं, उन्होंने भी अपने आप ग्रहण किए हुए महत्त्व को छोड़कर श्लेष्ठतर बुद्धि वाले लोगों (चाहे वे तरुण ही क्यों न हों) के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त की है । यहाँ तक कि उद्यमशील निपुण और चतुर मनुष्यों ने भी नवीन विचारों की सर्वशक्तिमत्ता के सामने सिर झुकाया है

अतएव यह बात चित्तपट पर भली भाँति अंकित होनी चाहिए कि बुद्धिरूपी धन ही सच्चा धन है । यह अक्षय धन है। इसकी जितनी पूजा और सम्मान किया जाये, थोड़ा है । भौतिक और जड़धन को हमें सबसे निकृष्ट समझना चाहिए । मनु भगवान् कहते हैं -

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ।।

"सम्पत्ति, जन्म का माहात्म्य, आयु, व्यवसाय सम्बन्धी कौशल या निष्कपट उद्यम और ज्ञान (बुद्धि विभव) ये पाँच चीजें सम्मान के योग्य हैं, और इनमें पहली से पीछे वाली आदरणीय हैं ।" परिणाम यह निकलता है कि मानसिक ऐश्वर्य सबसे अच्छा धन है, और कि इसकी तलाश (जो कि धन की तलाश से सर्वथा विपरीत है) ही मनुष्य प्रकृति की श्रेष्ठता के समुचित है । मन ही शक्ति का सच्चा उद्गम स्थान है, और विचार (या ज्ञान) ही सच्ची सम्पत्ति है, जिसके सामने शेष सबकुछ मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाता है । उपनिषद् कहती है-

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।

सच्ची शक्ति आत्मा से आती है और अमरत्व विचारों (बुद्धि) से प्राप्त होता है ।

అస్పృశ్యులకు 'నో ఎంట్రీ'

– ఎం.వి.ఆర్.శాస్త్రి

అది అంటరానితనానికి ఆఖరి మెట్టు. కుల వివక్షకు పరాకాష్ఠ.

ఒకానొకప్పుడు దళితులను అగ్రవర్ణాల వారి సరసన కూచోనిచ్చేవారు కాదని, తాకనిచ్చేవారు కాదని, వారి పిల్లలను కులీనుల బళ్లో చదవనిచ్చేవారు కాదని, దేవాలయాల గడప తొక్కనిచ్చేవారు కాదని విన్నాం. చదివాం. గుడి లోపలికి వెళ్లే మాట దేవుడెరుగు. కనీసం గుడి బయట రోడ్డు మీద కూడా వారిని నడవనిచ్చేవారు కాదంటే నమ్ముతారా ?

ఎప్పుడో శతాబ్దాల కింద వేదాధ్యయనాలు జరిగే బ్రాహ్మణవాడల్లోకి పంచములు వెళ్లగలిగే వారు కాదంటే... పెద్ద కులాల మోతుబరులు వీధిలో ఎదురైతే చెప్పులు చేతపట్టుకుని ఒకపక్కన ఒదిగి ఉండవలసి వచ్చేదంటే అప్పటి దేశకాల పరిస్థితుల్లో సామాజిక కట్టులిట్లు అంత కర్కశంగా ఉండేవని – సమర్థించలేకపోయినా కనీసం అర్థం చేసుకోవచ్చు. కాని – కుల దురహంకారంతో కళ్లకు పొరలు కమ్మినవాళ్లు ఏకంగా కొన్ని కులాలకు కులాలనే దేవుడి దరిదాపుల్లోని వీధుల్లో కాలు పెట్టకుండా నిషేధిస్తే... ఈ ఆధునిక కాలంలో కూడా రాజ్యమేలేవాళ్లు, న్యాయాన్ని నిలబెట్టాల్సిన ప్రభువులు బాధిత జనంలో కదలిక వచ్చిన తరువాత ఆ అమానుత ఆంక్షనే బలపరిచారంటే ఒక పట్టాన నమ్మశక్యం కాదు.

కాని అది యధార్థం. నేటికి తొంభై ఏళ్ల కింద మన దేశంలోనే అటువంటి దారుణ దురంతం జరిగింది. దాని మీద పెద్ద అలజడే లేచింది.

కాని – షరా మామూలే. మహాత్ముని దయవల్ల ఉద్యమం కాస్తా చప్పబడి చచ్చుబడిపోయింది.

అదే – చరిత్ర ప్రసిద్ధి చెందిన వైకోమ్ సత్యాగ్రహం.

అంటరానితనపు భయానక వికృత రూపాన్ని మొత్తం దేశం నివ్వెరపోయేలా కళ్లకు కట్టించింది వైకోం వ్యవహారం. వైకోం అనేది కేరళలో కొచ్చి(న్)కు ఆగ్నేయాన కొట్టాయం సమీపాన ఒక మోస్తరు పట్టణం. అక్కడి శివాలయం కులమౌఢ్యానికి పెట్టింది పేరు. అది నాలుగు ఫుట్‌బాల్ గ్రౌండ్‌లంత పెద్ద ప్రాంగణం. దానికి మూడు దారులు. అవి ఊళ్లోని పెద్ద బజారుగుండా వెళతాయి. వాటిలో అడుగుపెట్టేందుకు అవర్ణులు అనర్హులు. అస్పృశ్యుల గాలి సోకితే మహా దేవుడి ఆలయం అపవిత్రమవుతుందనీ, వారి నీడ పడితే చాలు గుడికి వెళ్లే భక్తులు మైలపడతారనీ గుడి పెత్తందార్ల నమ్మకం. అందుకే–'ఇజవలు, పులయలు, తియ్యలు తదితర నిమ్న కులాల వారికి ప్రవేశం నిషిద్ధం' అని గుడి చుట్టుపక్కల పబ్లిక్ రోడ్ల మీద బోర్డులు పెట్టారు.

మనలో మాల మాదిగలలాగే అవి కేరళలోని దళిత కులాలు. పైకులాల పవిత్రులు అంతగా చీదరించుకోవటానికి ఆ అవర్ణులేమీ అనాగరికులు కారు. మరీ అంత అసహ్యంగా, జుగుప్సాకరంగా బతికేవారూ కాదు. ప్రధానంగా కల్లుగీత పనివారైన ఇజవలలో కులీనులతో సమానంగా చదువుకున్నవారు, ఎవరికీ తీసిపోని పరువు ప్రతిష్ఠలు ఉన్నవారు ఎంతోమంది ఉండేవారు. కాని ఆ కులంలో పుట్టినవాడెవడైనా నలభై అడుగుల లోపు దూరాన తమ కంట పడితే మైల పడతామని భూస్వామ్య వర్గపు నాయర్ల భావన. అలాగే ఇజవల కంటే తక్కువ స్థాయి అయిన పులయల గాలి అరవై అడుగుల దూరం నుంచి సోకినా మైల పడతామని అగ్రవర్ణాల భయం !

ప్రధానంగా వ్యవసాయ కార్మికులైన పులయుల కాయకష్టం లేకుండా ఏ కులీనుడికీ కంచంలోకి అన్నం రాదు. పులయలు పండించే ధాన్యం, 'తియ్య'లు కోసే కొబ్బరికాయలు 'షానార్లు' తయారుచేసే బెల్లం, 'పరియ'లు చేసే కష్టం దేవుడి సేవకు నిరభ్యంతరంగా పనికివస్తాయి. వాటికి లేని అంటు వాటిని చేసేవాళ్లకు మాత్రం ఎందుకని నారాయణగురు వంటి దళిత గురువులు ఎన్ని విధాల చెప్పినా ప్రయోజనం లేదు. పంచముల చూపు పడితేనే శివలింగం అపవిత్రమై పూజకు పనికిరాకుండా పోతుందన్న మూఢ నమ్మకం సడలలేదు.

తమకు గుడిలో ప్రవేశం లేకపోయినంత మాత్రాన అవర్ణులకు కొల్లబోయింది ఏమీలేదు. కాని గుడి చుటుటపట్ల రోడ్లను కూడా తమకు బందు చేయటం వారికి పెద్ద ఇబ్బంది. వాటిని వాడనే కూడదని అనడం వల్ల రెండు మైళ్లు ఎక్కువ నడిచి చుట్టూ తిరిగి ఊళ్లోకి వెళ్లవలసి వచ్చేది. చిత్రమేమిటంటే – దళిత కులంలో పుట్టినవారెవరైనా కిరస్తానీ మతమో, తురక మతమో పుచ్చుకుంటే గుడి వీధులలో యథేచ్ఛగా తిరగవచ్చు. అదే కులంలో మిగిలిన వారు మాత్రం ఆ వీధుల్లో అడుగుపెట్టడం నేరం.

ఓసారి అయ్యంకలి అనే పులయ కుల ప్రముఖుడు ఎడ్లబండి మీద గుడివీధిలోకి వెళ్లబోతుంటే సవర్ణులు అడ్డగించి బలవంతంగా దింపేశారు. ఆ మానవుడినేమో కోసెడు దూరం చుట్టూ తిరిగి నడుచుకుటూ ఊళ్లోకి వెళ్లమన్నారు. అతడెక్కిన బండినీ, ఎడ్లను మాత్రం గుడి వీధి మీదుగా పోనిచ్చారు.

ఇది తరతరాలుగా సాగుతున్న దారుణ వివక్ష. కథాకాలానికి నూరేళ్ల కిందట కాబోలు రెండు వందల మంది ఇజవ యువకులు కట్టుబాటును ధిక్కరించి మహాదేవాలం లోపలికి సామూహికంగా వెళ్లి పూజ చేయతల పెట్టారు. అప్పుడు తిరువాన్కూరు రావీ బలరామవర్మ. ఫలానా తేదీన ఇజవలు ఆలయ ప్రవేశం చేయనున్నారని తెలియగానే దివాను దాళవ కుంచుకుట్టి పిళ్లై ఆ సంగతేదో చూడమని తన మనిషిని పంపాడు. అతగాడు

గుడి పెద్దలతో మాట్లాడి సాయుధ మూకను సిద్ధం చేశాడు. అనుకున్న ప్రకారం ఇజవ యువకులు ఊరేగింపుగా తూర్పు వైపు నిషిద్ధ వీధిలో అడుగుపెట్టి గుడివైపు కుదిలారో లేదో దివాను మనుషులు విరుచుకుపడ్డారు. మొత్తం 200 మందినీ చంపేసి, గుడికి ఈశాన్యాన నీటి మడుగులో పాతిపెట్టారు. దాళవపిళ్లై చేయించిన సంహారం కాబట్టి ఆ మడుగుకు 'దాళవకులం' అని పేరు వచ్చింది.

1865లో తిరువాన్కూరు ప్రభుత్వం తమ రాజ్యంలోని పబ్లిక్ రోడ్లను అన్ని కులాలవారూ సమానంగా ఉపయోగించుకోవచ్చని ఉత్తర్వు చేసింది. దాని ప్రకారం వైకోం గుడికి వెళ్లే రోడ్ల మీదా తమను అనుమతించాలని దళితులు కోర్టుకెక్కారు. వ్యాజ్యం హైకోర్టు దాకా వెళ్లింది. ఉన్నత న్యాయస్థానం వారేమో ప్రభుత్వ ఉత్తర్వు రాజవీధులకు మాత్రమే వర్తిస్తుందని తేల్చారు. వైకోం గుడి చుట్టూ ఉన్నవి 'రాజవీధులు' కాదని, అవి 'గ్రామ వీధులు' అని చెప్పి కేసు కొట్టేశారు. సంప్రదాయాన్ని ధిక్కరించి సదరు గ్రామ వీధులలో అవర్ణులు అడుగు పెట్టకుండా సవర్ణుల కోరిక మేరకు పోలీసు కాపలాను కూడా ఏర్పాటు చేయించారు.

న్యాయస్థానం ద్వారా కాని పనిని చట్టసభ ద్వారా సాధించాలని 1905లో ఇజవలు కొంత ప్రయత్నం చేశారు. తిరువాన్కూరు రెజిస్లేచరులో ముగ్గురు ఇజవ ప్రతినిధులు వైకోం వీధుల్లో దళితులపై ఉన్న నిషేధాన్ని ఎత్తివేయాలని గట్టిగా కోరారు. అది మతపరమైన సమస్య కనుక అందులో తాము కలగజేసుకోలేమని ప్రభుత్వం చేతులెత్తేసింది.

కాలం అలా నడుస్తుండగా ఒకసారి దళితుల ఆరాధ్య గురువైన శ్రీ నారాయణ గురుస్వామి ఏదో పని మీద ఒకసారి వైకోం వెళ్లాడు. లక్షలాది భక్తులకు జ్ఞానబోధ చేస్తున్న ఆ ఆధ్యాత్మిక గురువును కూడా అవర్ణుడిగా పుట్టిన పాపానికి కోవెల వీధిగుండా వెళ్లటానికి వీల్లేదని సవర్ణులు అడ్డుకుని అవమానించారు. అంతటి మహనీయుడు వెళుతున్న రిక్షానే ఒక తాగుబోతు వర్ణుడు కులం లిరణంతో అడ్డగించినందుకు ఆయన భక్తులు ఆగ్రహించి తిరగబడితే ఏ ప్రభుత్వమైనా వారిని ఆపగలదా అని 'మలయాళ మనోరమ' పత్రిక 1924 మార్చి 29న ఘాటైన సంపాదకీయం రాసింది. తిరుగుబాటు రాకపోయినా ఈ ఉదంతంతో నారాయణగురు భిమానుల్లో పెద్ద కదలిక వచ్చింది. దుర్మార్గపు కట్టుబాటును మట్టుపెట్టే వరకూ నిద్రపోని గురుస్వామి అనుంగు శిష్యుడు టి.కె. మాధవన్ కంకణం కట్టుకున్నాడు.

ఇంచుమించుగా ఆ కాలంలోనే శ్రద్ధానందస్వామి దృష్టి కూడా వైకోం వైపరీత్యం మీద పడింది. ఆయన శిష్యులు మిగతా ప్రాంతాల్లో లాగే వైకోంలోనూ వివిధ కులాల వారిని ఆర్యసమాజ్‌లోకి చేర్పిస్తుండేవారు. ఆ క్రమంలో కొందరు అవర్ణులనూ వారు ఆర్యసమాజ్‌లో కలుపుకున్నారు. అందులో చేరాక కులాలు మిగలవు. అందరూ ఆర్యులే అవుతారు. కాబట్టి వారిని పూర్వపు కులాలలకు చెందినవారుగా పరిగణించరాదనీ, క్రైస్తవ, మహమ్మదీయ మతాల్లో చేరిన అవర్ణుల్లాగే వారినీ కోవెల వీధిలో రాకపోకలను అనుమతించాలనీ ఆర్య సమాజికులు డిమాండు చేశారు. ధికారులు మొదట అందుకు అంగీకరించారు. కాని సవర్ణుల ఒత్తిడి మీద ప్లటుమార్చి, ఆర్య సమాజంలో చేరినా అవర్ణులు అవర్ణులే - గుడివీధిలో తిరగడానికి అనర్హులే అని తేల్చారు.

దాని మీ శ్రద్ధానందస్వామీ భగ్గుమన్నాడు. "It means that a member of the depressed classes can not have his social liabilities removed unless he forsakes the Hindu society and religion". *(దీని అర్థం దళిత వర్గాలకు చెందినవాడు హిందూ సమాజాన్ని, మతాన్నీ వదిలేసుకుంటే తప్ప తనకున్న సామాజిక వైకల్యాలను తొలగించుకోలేడు అన్నమా)* అని 1924 మే 11 తేదీ **'లీడర్'** పత్రికలో శ్రద్ధానంద తీవ్ర ఆక్షేపణ వ్యక్తపరిచాడు. హిదూ సమాజం, ముఖ్యంగా హిదూ మహాసభ అధ్యక్షుడైన పండిట్ మదన్‌మోహన్ మాలవీయ దీనిపై ప్రత్యక్ష కార్యాచరణకు దిగాలని ఆయన ఉద్బోధించాడు. అలాగే మహాత్మాగాంధీకి పరిస్థితిని వివరించి, దళితుల పౌర హక్కులను పరిరక్షించటానికి చొరవ తీసుకోమని కోరాడు.

ఇంకో రూటులో ఇజవ నాయకుడు టి.కె. మాధవన్ కూడా అప్పటికే గాంధీ దగ్గరికి చేరాడు. అప్పట్లో అతడు తిరువాన్కూరు లెజిస్లేచరు సభ్యుడు. దళితులకు ఆల ప్రవేశాన్ని కోరుతూ అతడు తీర్మానం ప్రవేశపెడతానంటే ప్రభువులు అనుమతి ఇవ్వలేదు. దివాను రాఘవయ్యను ఇంటి దగ్గర దర్శించి, మీ నిర్ణయం దయచేసి మార్చండి అని వేడుకుంటే అతడు ససేమిరా కుదరదు పొమ్మన్నాడు. పోనీ మహారాజా వారిని కలిసి మహజరు ఇస్తాం అంటే దానికీ వీల్లేదన్నాడు. దాంతో ఒళ్లు మండి 'చట్టసభలో తీర్మానం పెట్టనివ్వరు. మహారాజాను కలవనివ్వరు. మాకు న్యాయం చేయరు. ఇక మేమేం చెయ్యాలి? ఊళ్లో ఉండాలా? పోవాలా?' అని అడిగాడు. దివాను తాపీగా 'ఇష్టం లేకపోతే ఊరు విడిచి వెళ్లిపోండి' అని బదులిచ్చాడు.

ఇక ఊరుకుంటే లాభం లేదు. పెద్ద పట్టే పట్టాలి అని నిశ్చయించి, ఏమి చేస్తే బాగుంటుందని సర్దార్ కె.ఎం.పణిక్కర్‌ని మాధవన్ సలహా అడిగాడు. మీకూ, నారాయణ గురుస్వామికీ దళితుల మీద ఎంత పట్టు ఉన్నా, మీకు మాత్రమే పరిమితమైతే అది అది స్థానిక ఆందోళనగానే మిగిలిపోతుంది. జాతీయ, అంతర్జాతీయ స్థాయిలో అందరి దృష్టినీ ఆకర్షించాలంటో కాంగ్రెసు లాంటి జాతీయ సంస్థ ప్రమేయం ఉండి తీరాలి. అలాగే కేవలం రోడ్ల మీద నడిచే హక్కు కోసమే ఆందోళన చేయకుండా కులం పేరిట జరుగుతున్న అన్యాయాలూ, ఘాతుకాల మీదా ఉద్యమం నడిపితే ప్రపంచం మొత్తం మీ వైపు చూస్తుంది. కాబట్టి గాంధీజీని కలిసి, విషయం వివరించి, కాంగ్రెసు సంస్థనూ కలుపుకొని వెళ్లండి - అని పణిక్కర్ సలహా ఇచ్చాడు.

ఆ ప్రకారమే తరునల్వేలి వచ్చినప్పుడు మహాత్ముడిని మాధవన్ వెళ్లి కలిశాడు. హరిజనుల ఆలయ ప్రవేశానకి సమయం

శేషము 17వ పేజిలో

మన వేదశాస్త్రాల పరిచయం

డా|| కోదూరి సుబ్బారావు

మనమంతా భారతీయులం. భారతదేశ వాసులం. మతపరంగా మనం హిందువుల మని లోకంలో వ్యవహరింప బడుతున్నాం. కాని, మనం హిందువులం కాదు. ఎందుకనగా మతటే 'అభిప్రాయం' మని అర్థం. క్రైస్తవమతం అంటే ఏసుక్రీస్త యొక్క అభిప్రాయాలను, ఉపదేశాలను అనుసరించే ఒక సాంప్రదాయం. అట్టివారిని క్రైస్తవులంటారు. అట్లే మహ్మద్‌ప్రవక్త యొక్క అభిప్రాయాలను, ఉపదేశాలను అనుసరించేవారిని మహ్మదీయులనీ, మహాత్మా బుద్ధుని అభిప్రాయాల ననుసరించేవారిని బౌద్ధులనీ, జినముని అభిప్రాయాల ననుసరించేవారిని జైనులని అంటారు. వీరంతా ప్రవక్తలు. వారి వారి కాలాలలో మానవసమాజంలో ఏర్పడిన కురీతులను పోగొట్టడానికి వారికి తోచిన మార్గాన్ని వారు అనుసరించి ప్రబోధించారు. ఆనాడు వాటిని అనుసరించిన మానవులకు కొంత ఉపశమనం కలగింది. దానితో వారు ఆ ప్రవక్తల కనుయాయులై ఆ యా మతస్థులుగా లోకంలో వ్యహరింప బడుతున్నారు. వాస్తవిక స్థితి యిట్లుండగా - 'హిందువు' అనే వ్యక్తి లేకుండా హిందూమతం ఎలా ప్రారంభమౌతుంది? కనుక ఈ మాట మనకు వర్తించదు. మనమంతా పరమేశ్వరీయ జ్ఞానమైన వేదాలలోని ఉపదేశాల ననుసరించే వేదమతానికి చెందినవారం. వైదికులం. ఇక్కడ 'వైదికు'లంటే బ్రాహ్మణులలోని ఒక వర్గమని భావించరాదు. వేదానుయాయులని గ్రహించాలి.

మధ్యకాలంలో మహ్మదీయులు మనదేశాన్ని పాలించినపుడు వారి అల్లాదేవుని మనం అంగీకరించకపోవటంచే మనను హిందువులన్నారు. అట్టి హిందువు లనుసరించే మతాన్ని హిందూమత మన్నారు. అట్టివారు నివసించే దేశం కనుక హిందూదేశ మన్నారు. అరబ్బీ భాషలో 'హిందువు' అంటే 'కాఫిర్' అని అర్థం. కాఫిర్ అంటే ఇస్లాంమతంపై నమ్మకంలేని నాస్తికుడని వారి అభిప్రాయం. ఇంతేగాక 'హిందూ' పదమునకు అరబ్బీ నిఘంటువులో - గులామ్, కాలా అద్మీ, బద్మాష్ మొదలైన నీచమైన అర్థాలుకూడా వ్రాసిఉన్నాయి. కనుక మనం హిందూ పదమును వదిలిపెట్టడమే మంచిది.

సింధునదిని బట్టి ఈ దేశానికి పూర్వం సింధుదేశమనే పేరుండేదనీ, అది నరిగా ఉచ్చరింపబడక హిందూదేశంగా పిలవటం మొదలైయ్యిందని కొందరంటారు. ఈ అభిప్రాయం కూడా సరియైనది కాదు. సింధునదిని యిప్పుడు కూడా సింధునది యనియే అంటున్నాముకదా ! హిందునది యని అనటం లేదు కదా ! మరి సింధుదేశాన్ని హిందూదేశం అనటం ఎందుకు? ఈ విధంగా ఎన్నో ప్రశ్నలు వస్తాయి. కనుక ఈ చర్చ నింతటితో ఆపి మన వేదమతాన్ని గూర్చిన కొన్ని ముఖ్యవిషయాలు తెలుసుకుందాము.

వేదం ముందుగా ఆస్తిక్యాన్ని ప్రబోధిస్తుంది. యోజనాబద్ధంగా నిర్మింపబడిన ఈ సృష్టికి కర్త ఒక ప్రయోజనకరమైన పదార్థంగా ఏర్పడలేవని చెబుతుంది. ఇప్పుడుకూడా మనకీ విషయం స్పష్టంగా కనబడుతుంది - ఇటుకలు వాటంతట అవిగా కలిసి ఒక గోడగా ఏర్పడటం లేదు. తాపీమేస్త్రి దానిని నిర్మిస్తున్నాడు. కలప తనంత తానుగా తలుపులు, కిటికీలుగా తయారుకావటం లేదు. వడ్రంగి వాటిని ఆవిధంగా నిర్మిస్తున్నాడు. బంగారం స్వర్ణకారుడు లేకుండా నగలుగా తయారుకావటంలేదు. అందుచే ఎక్కడ నిర్మాణం కనబడుతుందో అక్కడ ప్రత్యక్షంగానో లేక పరోక్షంగానో కర్త ఉంటాడు. ఈ తార్కిక దృష్టితో చూస్తే యోజనాబద్ధంగా నిర్మింపబడిన ఈ సృష్టికి కర్త తప్పక ఒకడున్నాడు. అతనినే మన వేదం 'దేవుడు' అంటుంది.

వేదం వివరించే దేవుడు సర్వవ్యాపకుడు. అందుచేతనే విశ్వంలో అంతటా సృష్టి స్థితి లయ కార్యాలు జరుగుతున్నాయి. దేవుడు ఎక్కడో ఒక చోటనే ఉంరీ ఈ క్రియలు జరుగవు. కర్త ఒకచోట క్రియ మరొక చోట జరగటం అసంభవం. నాలుగవ ఆకాశంలోనే, ఏడవ ఆకాశంలోనో వైకుంఠంలోనో, కైలాసంలోనే మాత్రమే దేవుడుంటే ఈ విశా విశ్వంలో ప్రతి అణువులో జరిగే క్రియలు జరుగవు. నేటి వైజ్ఞానికులు సృష్టిలోని ప్రతి అణువులోను ప్రోటాన్, న్యూట్రాన్ల చుట్టూ ఎలక్ట్రాన్‌లు నియంత్రిత గతితో పరిభ్రమిస్తున్నా యంటున్నారు. అందువల్లనే ఆయా మూలకాలు (ఎలిమెంట్స్) స్థిరంగా ఉండగలుగుతున్నా యంటున్నారు. ఇదే విషయం సృష్ట్యాదిలో ఆవిర్భవింపబడిన వేదం - **"ఈశావాస్య మిదం సర్వం యత్కించ జగత్యాం జగత్"** (యజుర్వేదం 40-1) - గతిశీలమైన ఈ జగత్‌లో అణువు మొదలు బ్రహ్మాండం వరకు ఈశునిచే - నియామకునిచే వ్యాపించబడి ఉందని చెబుతుంది. ఇట్టి భావంగల మంత్రాలు వేదాలలో కోకొల్లలుగా ఉన్నాయి. ఆ పరమేశ్వరుడు ఒకే ఒక్కడని కూడా పెక్కుచోట్ల చెప్పబడింది.

'భూతస్య జాతః పతిరేక ఆసీత్' (యజు. 13-4)

భూమి, జలము, అగ్ని, వాయువు, ఆకాశము అనే పంచ భూతాలను, సమస్త ప్రాణిజాతులను సృజించి పాలించే పతి-దదేవుడు ఒక్కడే ఉన్నాడు.

న ద్వితీయో న తృతీయశ్చతుర్థో నాప్యుచ్యతే।
న పంచమో న షష్ఠః సప్తమో నాప్యుచ్యతే।
నాష్టమో న నవమో దశమో నాప్యుచ్యతే।
య ఏతం దేవమేకవృతం వేద ॥

(అథర్వ. 13-4-16, 17, 18)

సృష్టికర్త ఒకే ఒక్కడు. ఇద్దరుగాని ముగ్గురు గాని .... పదిమంది గాని లేనేలేరు. అతడు ఒకే ఒక్కడు. అట్టి ఏకేశ్వరుడైన పరమేశ్వరుని స్వరూపాన్ని, గుణ కర్మ స్వభావాలనుకూడా వేదం అతి స్పష్టంగా తెలుపుతుంది.

న పర్యగా చ్ఛుక్ర మకాయ మవ్రణ మస్నావిరగ్ం
శుద్ధ మపాప విద్ధమ్, కవిర్ మనీషీ పరిభూః
స్వయంభూర్ యాథా తథ్యతోర్థాన్
వ్యదధా చ్ఛాశ్వతీభ్యః సమాభ్యః ॥ (యజు. 40-8)

ఆ పరమేశ్వరుడు (పరి అగాత్) అంతటా వ్యాపించి యున్నాడు. (శుక్రమ్) సర్వశక్తిమంతుడు - ఇతరుల సహాయము లేకుండానే సృష్టి స్థితి ప్రళయాలు చేయగల శక్తిమంతుడు. (అకాయం) స్థూల సూక్ష్మ కారణ శరీరరహితుడు. (అవ్రణం) ఛిద్రరహితుడు. (అస్నావిరం) స్నాయు బంధనములు లేనివాడు. (శుద్ధం) పవిత్రుడు. (అపాపవిద్ధం)

జీవులవలె పాపములు చేసి వాటిచే కట్టబడనివాడు. (కవిః) వేదకవి - సర్వజ్ఞుడు. (మనీషీ) జీవుల మనోవృత్తుల నెరుగువాడు. (పరిభూః) దుష్టులను పరిభవించువాడు. లోకలోకాంతరా లనన్నిటిని అతిక్రమించి యుండువాడు. (స్వయంభూః) స్వయం స్థా గలవాడు. తన ఉనికికి మరొక కారణం లేనివాడు. (యాథాథ్యతోర్థాన్ వ్యదధాత్) ఈ సృష్టిలో ఏ పదార్థము నెట్లు సృజింపవలెనో అట్లు సృజించుచున్న సృష్టికర్త. ఈ సృష్టి ఎవరికొరకనగా-(శాశ్వతీభ్యఋసమాభ్యః) శాశ్వతులై జీవుల కొరకు.

జీవుడుకూడా పరమేశ్వరునివలె ఉత్పత్తి వినాశములులేని శాశ్వత తత్త్వమే. అయితే, జీవుడు అల్పజ్ఞుడు, అల్పశక్తిమంతుడు, అల్ప పరిమాణం కలవాడు. అవిద్యతోకూడి ఉండటంవల్ల దేహాత్మభ్రాంతికి గురియై కర్మలు చేస్తూ ఉంటాడు. ఆ కర్మఫలాల ననుభవించటానికి వివిధ జన్మలను (శరీరాలను) పొందుతూ ఉంటాడు. ఈ విషయం ముందు ప్రకరణాలలో వివరంగా తెలిసికొందాము.

సర్వవ్యాపకుడు, సర్వశక్తిమంతుడు, ఏకేశ్వరుడు, సృష్టికర్తయునైన పరమేశ్వరుడు ఈ సృష్టిని ఏ విధంగా నిర్మించాడో వేదం విశదంగా వివరిస్తుంది.

ఈ సృష్టికి పూర్వం ఏమీ తెలియరాని ప్రళయ స్థితి-గాఢాంధకారం ఉండేదని నాసదీయ సూక్తం (ఋగ్వేదంలోని- 10-129-3) చెబుతుంది. అప్పుడు సృష్టికి ఉపాదాన కారణమైన సత్వరజస్తమస్సులను పరమాణువులన్నీ విడివిడిగా సామ్యావస్థలో ఉంటాయి. ఆ ప్రళయ స్థితిలో జీవులయిన మనమంతా మూర్ఛితావస్థలో (ఏమీ తెలియని స్థితిలో) ఉంటాము. అట్టి మనపై కరుణించి పరమేశ్వరుడు ఈ సృష్టిని చేయ సంకల్పిస్తాడీ. ఈ సంకల్పాన్నే 'ఈక్షణ' మని మన శాస్త్రాలు వర్ణిస్తాయి. ఈ యాక్షణను వేదం 'కామః' అంటుంది. ఆ కామనతో మూల ప్రకృతిలో క్షోభ కలుగుతుంది. పరమాణువులు వివిధ నిష్పత్తులలో కలిసి మూలకాలుగా (ఎలిమెంట్స్‌గా) ఏర్పడతాయి. ఆ మూలకాలతోనే ఈ సృష్టి నిర్మింప బడింది.

పరమేశ్వరుడు సర్వవ్యాపకుడు, సర్వజ్ఞుడు, సర్వశక్తిమంతుడు కనుక తన అనంత జ్ఞాన బల క్రియలతో తానొక్కడే (మరెవ్వరి సహాయ సహకారాలు లేకుండా) ఈ విశ్వంలోని జడచేతన జగత్తునంతటిని నిర్మించి పాలిస్తున్నాడు.

అది ప్రాణిసృష్టి అమైథునంగానే జరిగింది. ప్రారంభంలో భూమి అనేక రసాయనిక మార్పులకు గురియై పొరలు పొరలుగా ఏర్పడుతుంది. బరువైన ఇనుము, నికిల్ మొదలైన లోహాలు కేంద్రం దగ్గరకు చేరుకొని కోర్‌గా ఏర్పడతాయి. తేలిక లోహాలు ఆపైన చేరతాయి. చివరగా భూమిపైన ప్రాణిజాతులు నివసించటానికి అనువైన ఒక పొర (క్రస్ట్) ఏర్పడుతుంది. అనేక సంవత్సరాలు వర్షాలు కురిసి సముద్రాలు ఏర్పడతాయి. భూమి చల్లబడుతుంది ముందుగా జలచరాలు, అంతకన్న ముందుగా అవి తిని బ్రతకడానికి అనువైన నాచువంటి వృక్షజాతులు సృజింపబడతాయి. అనంతరం భూచర ఖేచరాలు సృజింపబడతాయి. చివరి ప్రాణిజాతిగా మానవులు సృజింపబడతారు.

ఆది మానవసృష్టి త్రివిష్టప పీఠభూమిపై (నేటి టిబెట్ ప్రాంతంలో) జరిగిందని మన శాస్త్రాలు చెబుతున్నాయి. అది మానవులు భూగర్భంలోనే అండములలో యువావస్థవరకు ఎదిగి బయటకు వచ్చారు. ఒకే ఒక జంటగా కాక అనేక మంది స్త్రీలు, పురుషులు ఒకేసారి ఉద్భవించటం జరిగింది. ఆ ఆదిమానవులు 3 రకాలుగా ఉంటారని వేదం చెబుతుంది.

'తేన దేవా అయజన్త సాధ్యా ఋషయ శ్చ యే' (యజు. 31-9)

వారెవరనగా - దేవతలు, సాధ్యులు, ఋషులు. దేవతలంటే విద్యావినయ సంపన్నులు, పరోపకార పరాయణులు. సాధ్యులంటే సృష్టికార్యానికి సాధకులుగా ఉండే సామాన్య మానవులు. వీరు దేవత్వాన్ని, ఋషిత్వాన్ని పొందడానికి సాధన చేస్తూ ఉంటారు. ఋషులంటే - విద్యలోను యోగసాధనలోను అత్యున్నత స్థితిని పొందినవారు. ఇట్టి పవిత్ర హృదయులైన ఋషుల హృదయాలందే పరమేశ్వరుడు వేదజ్ఞానాన్ని ప్రకాశపరుస్తాడు.

అగ్నేర్ ఋగ్వేదో వాయోర్యజుర్వేదః సూర్యాత్సామవేదః
అథర్వాంగిరసో ముఖమ్ ॥ (శతపథ బ్రాహ్మణం) 11-5-2-3

అగ్ని అను పేరుగల ఋషికి ఋగ్వేదాన్ని, వాయు ఋషికి యజుర్వేదాన్ని, సూర్యఋషికి సామవేదాన్ని, అంగిరస ఋషికి అథర్వవేదాన్ని పరమేశ్వరుడుపదేశించినట్లు శతపథబ్రాహ్మణం చెబుతుంది. అగ్ని వాయు సూర్య అంగిరసులు నలుగురు వ్యక్తులేకాని భౌతిక పదార్థాలు కావు.

"వేదాలు పరమేశ్వర రచనలు కావు. కాలాంతరంలో ఋషులు తమ అనువాలను గ్రంథస్థం చేసా"రని పాశ్చాత్య చరిత్రకారులు వ్రాసారు. ఈ అభిప్రాయం సరియైనది కాదు. స్వయంగా వేదమే యివి ఈశ్వరరచన లంటుంది.

తస్మాత్ యజ్ఞాత్ సర్వహుత ఋచః సామాని జజ్ఞిరే ।
ఛందాంసి జజ్ఞిరే తస్మాద్యజుస్తస్మాదజాయత ॥ (యజు. 31-7)

ఆ సృష్టిరూప యజ్ఞాన్ని నిర్వహించు పరమేశ్వరుని నుండే ఋగ్వేద సామవేదములు, ఛందస్సులుగా చెప్పబడే అథర్వవేదము మరియు యజుర్వేదము ఉత్పన్నమయ్యాయి.

కనుక, వేదాలు ఈశ్వరీయ జ్ఞానమే అనుటలో ఏమీ సందేహం లేదు. ఇంతేగాక, మానవులకు కలిగే జ్ఞానం నైమిత్తికం. ప్రారంభిక జ్ఞానం యితరుల వల్లనే కలుగుతుంది.

మాతృమాన్ పితృమాన్ ఆచార్యవాన్ పురుషో వేద

శైశవావస్థలో మాతాపితరుల వల్ల, అనంతరం ఆచార్యులవల్ల - ఉపాధ్యాయుల వల్ల మానవులకు జ్ఞానం కలుగుతుంది.

ఆదిమానవులకు తల్లి, తండ్రి, ఆచార్యుడు ఉండరుకనుక పరమేశ్వరుని వల్లనే వారికి జ్ఞానం కలుగుతుందని అంగీకరించక తప్పదు. ఆ ఈశ్వరీయ జ్ఞానమే వేదం. ఆదిమానవులు ప్రకృతిని పరిశీలిస్తూ, జంతువుల అరుపుల ననుకరిస్తూ క్రమంగా మాటలు నేర్చారని చెప్పే వికాసవాదం సరియైనదికాదు. ఈ విషంలో చాలా పరిశోధనలు జరిగాయి. ప్రాథమిక జ్ఞాన కలగటానికి మరొకరి సాయం మానవునికి అవసరం. ఏ భాష నేర్పితే వారికి ఆ భాషనే వస్తుంది. ఏ నడవిక నేర్పితే ఆ నడవడికనే వస్తుంది.

పరమపితయైన పరమేశ్వరుడు ఉత్తమ ప్రాణిగా మానవుని జనింపజేసి 'బుద్ధి' అనే అంతరింద్రియాన్ని ప్రసాదించాడు. ఇది జ్ఞానాన్ని గ్రహించే సాధనం. కన్ను రూపాన్ని, చెవి శబ్దాన్ని గ్రహించినట్లే బుద్ధి

జ్ఞానాన్ని గ్రహించి ఆకలింపు చేసుకొంటుంది. మానవునికి గల పంచ జ్ఞానేంద్రియాలకు శ్రోత్ర త్వక చక్షు జిహ్వా ఘ్రాణేంద్రియాలకు వరుసగా శబ్ద స్పర్శ రూప రస గంధాదులైన అయిదు విషయాలను సృజించి యిచ్చినట్లే పరమేశ్వరుడు బుద్ధి అనే అంతరింద్రియానికి వియంగా వేదాన్ని ప్రసాదించాడు. ఇందులో మానవులకు కావలసిన సమస్త విద్యా విజ్ఞానాలు బీజరూపంలో సంక్షిప్తంగా ఉపదేశించబడ్డాయి. ఎవరికి ఏ విషయంలో అభిరుచి ఉంటే అందుకు తగిన మంత్రాలను సేకరించి మననం చేస్తే-వాటిని గురించి లోతుగా ఆలోచిస్తే ఆ విషయం బోధపడుతుంది. మంత్రం అంటేనే మననం చేయతగినదని అర్థం. **'మననాత్ మంత్ర ఇది ఉచ్యతే'** అని నిర్వచనం. కావుననే వేదాలలో ఉండే పద్యాలను మంత్రము లంలిరు. అట్టి మన వేదాలు ఏ రకగా ఉన్నాయో, ఏమి చెబుతున్నాయో శంక్షిప్తంగా తెలిసికొందాము.

ఋగ్వేద సంహిత

సృష్టికర్తయైన పరమేశ్వరుడు తాను సృజించిన సృష్టిలోని వివిధ పదార్థాల గుణగణాలను ఋగ్వేదం ద్వారా బోధించాడు. **'ఋచ్యతే స్తూయతే యయా సా ఋక్' "అర్చ్యతే ప్రశస్యతే అనేన దేవ విశేషః ఇతి ఋక్'** అని ఋక్ పదమునకు నిర్వచనాలు చెబుతారు. అంటే - దేనిచేత ప్రపంచ పదార్థాల గుణాలు స్తుతించబడ్డాయో, కీర్తించబడ్డాయో అది ఋగ్వేదం. వివిధ దేవతలను (దివ్యగుణాలుగల పదార్థాలను) ప్రశంసిస్తుంది కనుక దీనికి ఋగ్వేద మనే పేరు వచ్చింది. ఋగ్వేదం 10,589 మంత్రాలు గల బృహత్ గ్రంథం. నాలుగు వేదాలలోని మొత్తం మంత్రాల సంఖ్య 20,416 కాగా, సగానికి పైగా (10,580) మంత్రాలు ఈ ఋగ్వేదంలో ఉన్నాయి. ఇంతేగాక, దాదాపుగా సామవేదంలోని మంత్రాలన్నీ ఋగ్వేదంలో ఉన్నాయి. ఇంతేగాక దాదాపుగా సామవేదంలోని మంత్రాలన్నీ ఋగ్వేద మంత్రాలే. కొన్ని మంత్రాలు మాత్రమే ప్రత్యేక మంత్రాలు. అథర్వవేదంలో సుమారుగా 1200 మంత్రాలు ఋగ్వేద మంత్రాలే. యజుర్వేదంలో కూడా కొన్ని ఋక్ లున్నాయి. అందుచే నాలుగు వేదాలలో ఋగ్వేదం ప్రధానమైనది.

ఋగ్వేదంలోని మంత్రాలు ఛందోనియమం కలిగి పాదవ్యవస్థతో కూడి ఉంటాయి. దీనిలోని అధ్యాయాలకు మండలాలని పేరు. ఇవి మొత్తం 10 మండలాలు. వీటిని తిరిగి అనువాకాలుగా, సూక్తాలుగా విభజించారు. ఆ విభజన ప్రకారం ఋగ్వేదంలో 85 అనువాకాలు, 1028 సూక్తాలు ఉంటాయి. దీనిని వర్గాలుగా, అధ్యాయాలుగా విభజించి వ్యవహరించటం కూడా ఉంది.

ప్రతీ మంత్రానికి ఋషి, దేవత, ఛందస్సు, స్వరము అని నాలుగు విషయాలుంటాయి. ఋషిని గురించి రెండభిప్రాయాలున్నాయి. మంత్రార్థాన్ని తెలుసుకోగోరిన యోగి సమాధి స్థితిలోనికి వెళ్ళి పరమేశ్వరుని ప్రార్థిస్తే అట్టి యోగి అభీష్టం మేరకు పరమేశ్వరుడు ఆ మంత్రార్థాన్ని విశద పరుస్తాడు దీనిని మంత్రార్థ దర్శనం అంటారు. ఆ విధంగా మంత్రద్రష్టలైన వారినే ఋషులంటారు. అట్టి ఋషులు తమ శిష్య గణమునకు, ప్రజలకు ఆ మంత్రార్థాన్ని బోధించేవారు. ఏ ఋషి ముందుగా సమాధిస్థితిలోనికి వెళ్ళి ఆ మంత్రార్థాన్ని దర్శించి ప్రచారం చేసారో అట్టి ఋషిపేరును ఆ మంత్రానికి ఋషిగా పేర్కొంటూ వచ్చారు. వేదకాలం నుండి యిప్పటివరకు ఈ పద్ధతిని అనుసరిస్త వస్తున్నారు. ఇది మొదటి అభిప్రాయం. రెండవ అభిప్రాయం గలవారు దీనిని అంగీకరిస్తూ మంత్రాలకు చెప్పబడిన ఋషుల పేర్లు వారి అసలు పేర్లు కావు, అవి నైమిత్తిక నామములంటారు. వాటిలో యౌగికార్థం ఉంటుంది, అది మంత్రార్థాన్ని మరింత విశద పరుస్తుందంటారు.

ఉదాహరణకు - ఋగ్వేదంలోని మొదటి సూక్తానికి ఋషి మధుఛందువీ. ఆ మంత్రాల దేవత అగ్ని. అగ్ని యొక్క గుణగణాలు ఆ మంత్రాలలో చెప్పబడ్డాయి. ఆ గుణగణాలు ఎవ్వో మధుఛందుడు సమాధి స్థితిలోనికి వెళ్ళి దర్శించి ప్రచారం చేసాడు. అగ్నిలో మాధుర్యాన్ని స్యందించే గుణం కూడా ఉందని చెప్పి ఉంటాడని వారంటారు. (అగ్నిపక్వమైన ఆహారంలో మాధుర్యం రావటం మనం చూస్తున్నాము కదా!). అందుకే ఈ ఋషిని మధుఛందుడని ప్రజలు పిలిచి ఉంటారు అనేది రెండవ అభిప్రాయం.

ముందు చెప్పుకొన్నట్లుగా మంత్ర దేవత ఆ మంత్రంలో ఉపదేశింపబడిన విషయాన్ని (సబ్జెక్ట్ ఆఫ్ ది మంత్రా) చెబుతుంది. ఛందస్సు అక్షర గణను, పాదవ్యవస్థను, గురు-లఘు క్రమ విన్యాసాన్ని తెలుపుతుంది. ఋగ్వేదంలోని మంత్రాలన్నీ స్వర ప్రధానంగా ఉంటాయి. ఈ స్వరం లయాత్మకంగా గోచరిస్తుంది. షడ్జము, ఋషభము, గాంధారము, మధ్యమము, పంచమము, ధైవతము, నిషాదము - అని స్వరములు ఏడు. వీటి నుండే **స రి గ మ ప ద ని** అనే సంగీత స్వరా లుద్భవించాయి.

ఋగ్వేద ప్రథమ మండలంలోని మొదటి 10 సూక్తాలకు మధుఛందుడే ఋషి. ఇట్లే ప్రథమ మండలంలో మరొక 22 మంది ఋషులు ప్రముఖంగా కనబడతారు. రెండు నుంతీ ఏడవ మండలం వరకు వరుసగా గృత్సమద, విశ్వామిత్ర, వామదేవ, అత్రి, భరద్వాజ, వశిష్ఠ ఋషి వంశములవారి పేర్లు కనబడతాయి. ఎనిమిదవ మండలం కణ్వ - ఇంగీరస గోత్రీకులు దర్శించారు. తొమ్మిదవ మండలంలో 'పవమానః సోమః' దేవత గల చాలా సూక్తాలున్నాయి. అందుచే ఈ మండలానికి పవానసోమ మండల మనే పేరు వచ్చింది. వీటిని దర్శించిన ఋషుల పేర్లు మాత్రం వేరువేరుగా కనబడతాయి. పదవ మండలం కూడా వేరువేరు ఋషులు దర్శించినదే. విశేషంగా ఋగ్వేదంలో కొందరు ఋషికల పేర్లు (స్త్రీఋషుల పేర్లు) కనబడతాయి. అంటే వేదకాలంనాడే స్త్రీలు విద్యాభ్యాసం చేసి వేదాధ్యయనం చేసేవారన్న మాట. అందులో కొందరు విశేష ప్రజ్ఞకలిగినవారు యోగాభ్యాసం చేసి సమాధి స్థితిలోనికి వెళ్లి వేదమంత్రార్థ దర్శనంచేసి ఆ అర్థాన్ని లోకంలో ప్రచారం చేసారని గ్రహించాలి.

వేదాల యథార్థ స్వరూపం తెలియని కొందరు పాశ్చాత్య సంస్కృత విద్వాంసులు మంత్రకర్తలే ఋషు లని ప్రచారం చేసారు. ఈ అభిప్రాయం సరియైనది కాదు. 'ఋషిర్దర్శనాత్' అని చెప్పినట్లు మంత్రార్థ దర్శనం చేసినందుననే వారకి ఋషులే ఉపాధి లభించింది.

ఋగ్వేదంలో అనేక దేవీ దేవతల గుణగణాలు వర్ణింపబడ్డాయి. ఈ దేవతా పదములకు ఏకేశ్వవీడైన దేవుని పరంగాను, వివిధ ప్రాకృతిక పదార్థాల పరంగాను కూడా అర్థం చెప్పుకోవచ్చు. వీటిని అధ్యాత్మిక వ్యావహారి కార్థములంటారు. ఆధ్యాత్మికార్థం ఆత్మ పరమాత్మల జ్ఞానాన్ని బోధిస్తే, వ్యావహారికార్థం భౌతిక విజ్ఞానాన్ని బోధిస్తుంది. ఈ ప్రాకృతిక

దేవతలను మూడు వర్గాలుగా చేసి వ్యవహరిస్తారు. అవే - పృథివీ, అంతరిక్ష, ద్యుస్థానీయ దేవతలు. ఋగ్వేదాన్ననుసరించి -

యే దేవాసో దివ్యేకాదశస్థ పృథవ్యా మధ్యకాదశస్థ ।

అప్సు క్షితౌ మహినైకాదశస్థ తే దేవాసో

యజ్ఞ మిమం జుషధ్వమ్ ।(ఋగ్వేదం. 1-139-11)

ద్యుస్థానీయ దేవతలు - 11, పృథివీ స్థానీయ దేవతలు - 11, అంతరిక్షస్థ దేవతలు - 11. మొత్తం 33గురు దేవతలు ముఖ్యులు. మరొకచోట (ఋ. 3-9-9) (10-52-6) దేవతల సంఖ్య 3339గా గణింపబడింది. (త్రీణి శతా త్రిసహస్రాణ్యగ్నిం త్రింశ్చ దేవా నవ చాసపర్యన్). దేవత లెన్ని యున్నా మూడే ప్రధాన దేవత లంటుంది నిరుక్తం :

త్రిస్ర ఏవ దేవా ఇతి నైరుక్తాః అగ్నిః పృథివీ స్థానః

వాయుర్వేంద్రో వాన్తరిక్షస్థానః, సూర్యో ద్యుస్థానః ॥

దేవతలు మూడే. అందులో అగ్ని మొదటిది. అది పృథివీ స్థానికము. రెండవది వాయువు లేక ఇంద్రుడు (మోఘములలోని మెరుపు). ఇది అంతరిక్షస్థానికము. మూడవది సూర్యుడు. ఇది ద్యుస్థానికము.

తాసాం మహాభాగ్యా దేకైక స్యాపి బహూని నామధేయాని భవన్తి।

(నిరుక్తం. 7-2-1, 2)

ఈ మూడును మహాభాగ్యవంతము లైనవి. అనగా ఒక్కొక్కటి అనేకానేక గొప్పగుణాలు కలిగి ఉన్నాయి. అందువల్ల ఒక్కొక్క దేవతకు అనేక నామములున్నాయి.

దేవతల విషయంలో యజ్ఞికుల కథనం మరొకరకంగా ఉంటుంది. వేదాలలో వివిధ నామాలతో పేర్కొనబడిన దేవతలన్నీ వివిధ శక్తులే కాని ఒకే దేవతకుగల వివధ నామములని వారంగీకరించరు. దానికి యాస్కమహర్షి సమాధానం చెబుతూ స్థానాన్ని బట్టి వర్గీకరిస్తే పృథివిపైన వివధ పదార్థాలన్నీ పృథివీ స్థానీయములే అవుతాయి కదా ! అని వారంటారు. కనుక ఇచట పృథివీస్థానీయ దేవతలలో (వివిధ పదార్థాలలో) అగ్ని ముఖ్య దేవత యనీ, అంతరిక్షంలో వాయువు లేక విద్యుత్ ముఖ్య దేవతయనీ, ద్యుస్థాన దేవతలలో సూర్యుడు ముఖ్య దేవతయనీ గ్రహించాలి.

వేదాలలో దేవతలను గూర్చిన స్తుతి ప్రార్థనలను పరిశీలించినపుడు దేవతలు మానవాకృతి గలవేమోనని అనిపిస్తుంది. కానీ, ఇది సత్యం కాదు. ప్రకృతిక దేవతలన్నీ జ్ఞానలోని జడపదార్థాలే. ఆ వర్ణనలన్నీ ఆలంకారికములే ఉదాహరణకు :

1. **ఋష్వాత ఇంద్ర స్థవిరస్య బాహూ'**
   (ఋ. 6-47-8)
   'ఓ ఇంద్రా ! వృద్ధుడవైన నీయొక్క శత్రునాశకబాహువుల శరణు జొచ్చుచున్నాను.'
2. **'ఆ ద్వాభ్యాం హరిర్యమింద్రయాహి'**
   (ఋ. 2-18-4)
   ఓ ఇంద్ర ! నీ రెండు గుఱ్ఱములతో రమ్ము (రెండు గుఱ్ఱమలు జోడించిన రథముతో రమ్ము).

ఇట్టివే మరెన్నో ప్రార్థనలు వివిధ దేవతల నామములతో వేదాలలో కనబడతాయి. ఆ విధంగా వర్ణింపబడినంత మాత్రాన అవి మానవాకృతి గల జ్ఞానంగల దేవతలని తలంచరాదు. ఏలయన కొన్ని రాళ్ళను, రప్పలను, నదులను, వృక్షాలను సంబోధిస్తూ ప్రార్థనలు కనబడతాయి. అప్పుడు అవి జ్ఞానంగల దేవతలని అంగీకరించగలమా?

కనుక, సారంశమేమంటే వేదాలలోని వివిధ ప్రాకృతిక దేవతలన్నీ ప్రాకృతిక పదార్థాలు మరియు దివ్య శక్తులు. వాటి గుణగణాలను ఋగ్వేదం స్తుతిస్తుంది. మనం ఆ స్తుతుల ద్వారా ఆ యా పదార్థాల గుణగణాలను తెలుసుకుంటూ, వాటిని మనన చింతనలు చేస్తూ పరిశోధనలు చేస్తే ఎన్నో విజ్ఞాన విషయాలు వెలుగులోనికి వస్తాయి. మన జీవితం సుఖమయం అవుతుంది.

ఇక యివే మంత్రాలకు అధిభౌతికంగా అర్థం చెప్పుకుంటే అట్టి గుణాలుగల రాజులకు, విద్వాంసులకు, వ్యక్తులకు అవి వర్తిస్తాయి. ప్రకరణాన్నిబట్టి యివే మంత్రాలు ఆధ్యాత్మికార్థాన్ని బోధిస్తాయి. అప్పుడు ఆ పదములతోపరమేశ్వరుడు సూచింపబడతాడు. ఈ విధంగా వేదాలు అనేకార్థ బోధకాలు. ప్రకరణానుగుణంగా (ప్రసంగాన్నిబట్టి) అర్థం చెప్పుకోవటమే ఉత్తమం.

12వ పేజి తరువాయి

ఆసన్నమైందని గాంధీగారు చెప్పారు. దాని మీద కదలమని కేరళ కాంగ్రెసు కమిటీకి తాను జాబు రాస్తానన్నాడు. పణిక్కర్‌ను వెంటబెట్టుకుని 1923 చివరిలో కాకినాడ కాంగ్రెసుకు మాధవన్ హాజరయ్యాడు. 'భారతదేశ అస్పృశ్యుల తరపున ఇండియన్ నేషనల్ కాంగ్రెస్‌కు విజ్ఞాపన' అంటూ ఒక కరపత్రాన్ని అక్కడ పంచి పెట్టాడు. మాధవన్ దౌత్యం ఫలించింది. నిర్మాణాత్మక కార్యక్రమంలో అస్పృశ్యత నిర్మూలననూ చేర్చడానికి కాంగ్రెసు నాయకులు అంగీకరించారు. వైకోం ఉద్యమానికి పూర్తి మద్దతు ప్రకటించి, అందుకు కావలసిన చర్యలు చేపట్టటానికి కేరళ పి.సి.సి.కి అధికారం ఇచ్చారు.

కాకినాడ కాంగ్రెసు తీర్మానం ప్రకారం కె.పి.సి.సి. ఎర్నాకుళంలో సమావేశమై అస్పృశ్యత నిర్మూలన కమిటీని మాధవన్ సహా నలుగురు సభ్యులతో ఏర్పరచింది. కె.పి.సి.సి. ప్రముఖులూ, అస్పృశ్యత కమిటీ సభ్యులూ కలిసి నాలుగు రోజుల తరువాత వైకోం వెళ్లారు. 1924 మార్చి 30వ తేదీన 'దళితులకు ప్రవేశం నిషేధించబడింది' అని బోర్డులు పెట్టిన రోడ్లగుండా దళితులను ఊరేగింపుగా తీసుకువెళ్లాలి కాంగ్రెస్ కమిటీ నిశ్చయించింది. కుల ఘర్షణలకు ఆస్కారం ఉందన్న కారణంతో స్థానిక మేజిస్ట్రేటు ప్రాంతంలో ఊరేగింపులను నిషేధించాడు.

దాంతో ఊరేగింపు ఆలోచన మానుకుతీ, రోజూ ముగ్గురితో సత్యాగ్రహం చేయించాలని కాంగ్రెసు వారు నిశ్చయించారు. కోవెలకు దక్షిణాన ఫర్లాంగు దూరంలో సత్యాగ్రహ ఆశ్రమం నెలకొల్పారు. కబురు తెలియగానే దేశమంతటి నుంచి వ్చిన వందలాది వలంటీర్లతో ఆశ్రమం కిక్కిరిసిపోయింది. సత్యాగ్రహానికి ఎంచుకున్న రోడుడ పొడవునా వందల సంఖ్యలో పోలీసులు తుపాకులతో మొహరించి రేయింబవళ్లు కాపలావున్నారు. రహదారిని వాడుకునే పౌరహక్కు కోసం వైకోం దళితులు సాగించనున్న ఆందోళన మీద యావద్భారతం దృష్టి నిలిపింది.

దళిత మహోద్యమానికి తెర లేచింది.
అప్పుడు కదిలాడు మహాత్ముడు.
తనదైన శైలిలో.

दीपावली व स्वामी दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस के संदर्भ में सभा में यज्ञ का आयोजन किया गया । चित्र में सभा प्रधान व मंत्रीजी के साथ अन्य अधिकारीगण एवं प्रमुख कार्यकर्ता महानुभाव देखें जा सकते हैं

कवाड़ीगुड़ा आर्य समाज द्वारा संचालित पाठशाला में आयोजित विज्ञान शिविर का उद्घाटन करते हुए सभाप्रधान श्री विट्ठलराव आर्य

महाराणा प्रताप की धरती चित्तोड़गढ़ में महाराणा कुम्भा द्वारा निर्मित विजय स्थम्भ व चित्तोड़गढ़ का एक दृश्य, दृश्य में भाई पंडित कर्मवीर व रामचन्द्रजी के साथ सभा प्रधान श्री विट्ठलराव जी आर्य

लालागुड़ा आर्य समाज द्वारा निकाले गए जुलूस के दृश्य

ఉ.సం. 404245/2015 తేది 15-11-2015

ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ ఆధ్వర్యంలో

సకుటుంబ వైదిక ప్రశిక్షణ సాధనా శిబిరము

తేది 7 జనవరి 2016 నుండి 10 జనవరి 2016 ఆదివారము వరకు

స్థానము : పండిత్ నరేంద్ర భవనము, రాజమొహల్లా, రామ్‌కోట్, హైదరాబాదు.

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ ఆధ్వర్యములో సకుటుంబ వైదిక సాధనా ప్రశిక్షణ శిబిరము ఆచార్య సోమదెవ్ శాస్త్రి ముంబాయి గారి ఆధ్వర్యంలో నిర్వహించుటకు నిర్ణయించనైనది. ఈ శిబిరము గురువారము తేది 7వ జనవరి 2016 నుండి ఆదివారము 10వ జనవరి 2016 వరకు నిర్వహించబడును. శిబిరములో పాల్గొనువారు కుటుంబ సమేతముగా బుధవారము 6వ జనవరి 2016 సాయంత్రం వరకు పండిత్ నరేంద్ర భవనమునకు చేరుకోవలెను. జనవరి మాసంలో చలి వుంటుంది కనుక అవసరమైన దుస్తులు తీసుకొని రావలెను. మిగత ఏర్పాట్లన్నియు ఆర్యప్రతినిధి సభ వైపు నుండి చేయబడును. శిబిరములో పాలొను వారు ప్రతి వ్యక్తి రూ॥ 100/- సభ కార్యాలయంలో జమ చేయించి తమ తమ పేర్లను కుటుంబ సమేతంగా నమోదు చేసుకోవలెను.

ఈ శిబిరము, భారతదేశ గొప్ప విద్వాంసులైన ఆచార్య సోమదేవ్ శాస్త్రి గారి ఆధ్వర్యంలో నిర్వహించబడుచున్నది. వీరి సానిధ్యంలో నిర్వహించబడు ఈ శిబిరములో రావూర్‌కేల ఒడిస్సా నుండి స్వామి సుధానంద్ సరస్వతి గారు, గురుకుల్ హాథరస్ నుండి ఆచార్యా పవిత్రా వేదాలంకార్ గారు మరియు ప్రసిద్ధ భజనోపదేశకులు మరియు ఆయుర్వేదాచార్య పండిత్ కైలాష్ ఖర్మర, కోల్‌కత్తా గారు పాల్గొనెదరు. ఉ॥ 4.00 గం॥ల నుండి ప్రారంభమయ్యే ఈ శిబిరము రాత్రి 9.30 గం॥ల వరకు జరుగును. ప్రశిక్షణతో పాటు ఈ శిబిరము యొక్క విశిష్టత ఏమనగా సాయంకాలం ప్రశ్నోత్తరాలు, సందేహ నివారణాలుతో పాటు ఆరోగ్య సంబంధమైన చర్చ, పరామర్శ మరియు ఉపచారము ఆచార్య కర్మర్ గారితో చేయబడును కావున తమరు తమరి పరిచితులు మరియు మిత్రుల కుటుంబాల నుండి కుటుంబ సమేతముగా శిబిరములో పాల్గొనవలెనని కోరుచున్నాము. మీ-మీ కుటుంబాలలోని నేటి కొత్త వంశజలను (న్యూ జనరేషన్‌ను) వైదిక ప్రశిక్షణ శిబిరములో పాల్గొనుటకు ప్రోత్సహించి వచ్చేటట్లు ప్రయత్నం చేయవలెను. కుటుంబాల సంఖ్యను మరిమితంగా ఉంచుటకు నిర్ణయించనైనది కావున వెంటనే కుటుంబ సమేతంగా తమ పేర్లను సభ కార్యాలయంలో నమోదు చేసుకోగలరని కోరుచున్నాము.

సంపర్కము :

1) సభ కార్యాలయము - పండిత్ శ్రీ ప్రియదత్త శాస్త్రి గారు, **040-24756983, 24753827**

2) పండిత్ నరేంద్ర భవనము - శ్రీ శ్రీనివాస్ గారు, **040-66758707**

భవదీయ

హరికిషన్ వేదాలంకార్
సభ మంత్రి
సెల్ - **9703066001**

విఠల్‌రావు ఆర్య
ప్రధాన్ సభ
సెల్ - **9849560691**

Date of Publication 2nd & 17th of every Month, Date of posting 3rd and 18th of every month
आर्यजीवन 18-11-2015 Registered-Reg. No. HD/783/2015-17 RNI.No.52990/93

ఆర్య జీవన్
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, D.No. 4-2-15
మహర్షి దయానంద మార్గము సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95,
Vithal Rao Arya
Arya Pratinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad -95
Phone No. 040-24753827, 66758707, Fax: 040-24557946 Editior:
సంపాదకులు - విఠల్‌రావు ఆర్య ప్రధాన్ సభ

प.सं. 404245/2015

Date : 15-11-2015

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के तत्वावधान में

सपरिवार वैदिक प्रशिक्षण शिविर

दि. 7 जनवरी 2016 से 10 जनवरी 2016 रविवार तक

स्थान : पंडित नरेन्द्र भवन, राजमोहल्ला, रामकोट, हैदराबाद

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के तत्वावधान में पारिवारिक साधना प्रशिक्षण शिविर के आयोजन का निर्णय लिया गया है। यह शिविर पंडित नरेनद्र भवन में **दिनांक 7 जनवरी 2015 गुरुवार से 10 जनवरी 2016 रविवार तक** आयोजित है । प्रशिक्षण हेतु साधकों को परिवार सहित 6-1-2016 के सायंकाल तक प्रशिक्षण स्थल पंडित नरेन्द्र भवन, राजमोहल्ला हैदराबाद पहूंचना पडेगा। जनवरी ठंड का मौसम है अतः आवश्यक कपडे लेते आएं । अन्य व्यवस्था सभा की ओर से की जाएंगी । परिवारों की संख्या को सीमित रखा गया है । अतः परिवार अपना नाम सभा में प्रति व्यक्ति रु. **100/-** जमा करवाकर अंकित करवा लें।

शिविर **आचार्य सोमदेवजी शास्त्री** मुम्बई के सानिध्य में **स्वामी सुधानन्दजी राउरकेला** उड़िसा व **आचार्या पवित्रा वेदालंकारजी** गुरुकुल हाथरस तथा **पंडित कैलाशजी कर्मठ आयुर्वेदाचार्य** की देखरेख में सम्पन्न होगा । प्रातः **4.00** बजे से दिनचर्या प्रारम्भ होकर रात्री **9.30** तक चलेगी । इस शिविर की विशेषता यह रहेगी कि सायंकाल के समय शंका समाधान के साथ, विभिन्न प्रकार की बीमारियों के लिए आयुर्वेदिक उपचार हेतु परामर्श भी किया जा सकता है । आर्य समाजी कार्यकर्ता व अधिकारी अपने साथ अपने परिवार के नई पीढ़ी के सदस्यों को और अपने मित्र व अन्य परिचित साथियों के परिवारों से भी व्यक्तियों को परिवार सहित इस शिविर में शामिल करने का भरसक प्रयत्न करें ता कि आज की पीढ़ी के परिवारों को वैदिक मान्यताओं और परम्पराओं में प्रशिक्षण दिया जा सके । परिवारों की संख्या सीमित रखी जा रही है अतः कार्यालय से संपर्क कर **अभी से अपने नाग परिवार सहित तुरंत सभा कार्यालय में अंकित करवा लें ।**

सम्पर्क :

१) सभा कर्यालय
श्री पं. प्रियदत्तजी शास्त्री
040-24756983, 040-24753827

२) पंडित नरेन्द्र भवन
श्री श्रीनिवास जी
040-66758707

भवदीय

हरिकिशन वेदालंकार
मंत्री सभा
मोबाईल : **9703066001**

विट्ठलराव आर्य
प्रधान सभा
मोबाईल : **9849560691**

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR
Editor: VithalRao Arya • acharyavithal@gmail.com

సంపాదకులు : విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన్, ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్‌బజార్, హైదరాబాదు-95. Ph: 24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादकः श्री विट्ठल राव आर्य प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रेस चिक्कडपल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद तेलंगाना-९५.